रसिक-छैलजी

के

प्रमुख छन्दों का संकलन

रसिक छैल
व्यक्तित्व एवं कृतित्व

सम्पादक :

डॉ० राम रतन शास्त्री

पी-एच. डी.,



पदम प्रकाशन, भरतपुर.

परम पूज्य दादाजी

स्वर्गीय राव राजा यदुराज सिंह जी

के

चरणों में सादर समर्पित

कुँवर शिवराज सिंह
कुँवर दीपराज सिंह

प्रस्ताविक

रसिक छैल व्यक्तित्व एवं कृतित्व का यह संक्षिप्त प्रास्ताविक लिखने में मैं अपार आनन्द व आत्म-सन्तुष्टि का अनुभव कर रहा हूँ। कृष्ण और राधा की भक्ति के अनेक ग्रन्थ ब्रज भाषा में व खड़ी बोली में प्रकाशित हुए हैं पर इस कविता संग्रह के गीतों को पढ़ने के बाद पाठक गण स्वयं अनुभव कर लेंगे कि ये सभी गीत काव्य के अद्भुत उदाहरण हैं। कविताओं की हर पंक्ति ललित और कोमल है। इनमें कृष्ण भगवान के सगुण साकार रूप की प्रस्तुति अवर्णनीय है। विषय के अनुकूल साधारण व ओजमयी भाषा का प्रयोग किया गया है। साधारण जन कृष्ण भक्ति की धारा में डुबकी लगा कर अपने जीवन को धन्य कर लें उस भावना की शीतल फुआरें इनमे से निकलती हुयी दिखायी देती हैं। कृष्ण भक्ति काव्य जीवन में माधुर्य संचार करने में सफल हुआ है। इस दृष्टि से यह संकलन कसौटी पर खरा उतरता है।

रसिक छैल भरतपुर राजपरिवार में पैदा हुए। महलों में रहकर राजसी ठाठ से जीवन-यापन करना, राजनीति में सिद्धहस्तता प्राप्त करना, साहस पूर्वक किसी भी समस्या का निर्णय लेना, समाज के प्रत्येक क्षेत्र में निर्भीकता के साथ अनिर्णीत मामलों को तय करना तथा समाज के निर्बल वर्ग को सहानुभूति के साथ साथ आगे बढाने की कुशलता उनकी पैतृक सम्पति थी। इस परम्परा के विरुद्ध रसिक छैल हिन्दी की सेवा की ओर झुके और उन्होंने लोक गीत, कविताएँ गजल तथा अन्य तरह के गीतो की रचना की। उनके अध्ययन कक्ष में उनके हाथ की लिखी सामग्री का अथाह भंडार भरा पड़ा है। श्री ओमप्रकाश लवानिया मंत्री हिन्दी साहित्य समिति, भरतपुर की सद्-प्रेरणा मे हिन्दी व संस्कृत के प्रकांड विद्वान् श्री डॉ. रामरतन शास्त्री ने उनकी कुछ रचनाएँ एकत्रित की और इस कृति में संजोई हैं।

इन्हें पढ़कर पाठक वृन्द स्वयं 'रसिक छैल' जी के व्यक्तित्व की अनेक दृष्टि से परख कर लेंगे। प्रस्तुत कृति डॉ. राम रतन शास्त्री की भूमिका रसिक छैल जी के व्यक्तित्व व कृतित्व के बारे में गहन विवेचन प्रस्तुत करती है। दैनिक बोल चाल के शब्दों में तथा स्थानीय ब्रज भाषा के शब्दों में रची कविताएँ क्या साक्षर क्या निरक्षर सभी को कंठ से लय के साथ गाने के लिए प्रेरित करती हैं।

इस कृति की जिस दृष्टिकोण से देखो उसी से अभिनन्दनीय है। उसके सम्पादक को मैं हार्दिक बधाई देता हूँ।

रसिक छैल जी के गीतों को संगीत बद्ध करने के लिए श्री वनर्यासिह जी अध्यक्ष, कला मंदिर, भरतपुर बधाई के पात्र हैं जिनके प्रयासों से उनके ब्रजभाषा के गीतों की कैसिटें श्रोताओं तक पहुँची हैं।

श्रीमती रानी पद्म कौर पद्म प्रकाशन भरतपुर के इस अनूठे प्रकाशन का हृदय से मैं सत्कार करता हूँ जिन्होंने श्री कृष्णनन्दन कुलश्रेष्ठ आर. ई. एस. के दीर्घकालीन लेखन व प्रकाशन के अनुभव का लाभ उठाकर इस कृति को प्रस्तुत किया। उन्होंने सहज-सौहार्दपूर्ण तत्परता से जो सहायता इस कृति को अन्तिम रूप देने में की है इसके लिए मैं उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

—कु० रघुराज सिंह



राव राजा यदुराज सिंह जी "रसिक छल"
30 नवम्बर 1912—8 मई 1970

पूर्ववाक्

कवि 'रसिक छैल' की काव्य रचनाओं का संकलन सहृदय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। इस कृति को दो भागों में विभक्त किया है। 1 रसिक छैल काव्य–एक विवेचन 2. रसिक छैल काव्य–सकलन। विवेचन भाग में रसिक छैल काव्य के उन समस्त पक्षों को समाहित करने का प्रयास किया गया है जिनमें साहित्य एवं संगीत के अनुपम व गहन सिद्धान्त समाहित हैं। कवि के जीवन परिचय की सम्पन्न सामग्री उनके सुपुत्र कुँवर रघुराज सिंह जी से प्राप्त हुई है। यह जानकारी अपने आप में प्रामाणिक भी है।

काव्य सकलन कवि की हस्तलिखित प्रतियों से ही किया गया है। इस कार्य में भी कुँवर साहब का अत्यधिक सहयोग प्राप्त हुआ है। सकलन भाग को विषय की दृष्टि से एक सूत्र में बांधना और उसमें सामान्य त्रुटियों को शुद्ध करना तथा मूल प्रतियों से पाण्डुलिपि तैयार करने का कार्य डॉ. दिव्या, अनुसन्धान अधिकारी, राज्य सदर्भ केन्द्र, जयपुर द्वारा किया गया। उनके इस परिश्रमपूर्ण सहयोग के लिए मैं आभारी हूँ।

रचनाकार अपने आत्मभाव में विस्मृत होकर रचना लिखता है। उस समय उसके समक्ष रचना का उद्देश्य होता है और वह विदेहभाव से सांसारिक भावनाओं से शून्य होकर उसमें तल्लीन हो जाता है। किन्तु सम्पादक के समक्ष किसी कवि प्रतिभा की रचनायें होती हैं जिनके साथ उसे तदात्म भाव बैठाना पड़ता है और उसी तदात्म भाव से वह कवि के साथ सामञ्जस्य बैठाकर उसके भाव स्वरूप का प्रत्यक्ष दर्शन करता है। इस कृति के पीछे भी ऐसा ही तदात्म भाव है।

पुस्तक के प्रकाशन में मेरे अभिन्न मित्र श्री हिन्दी साहित्य समिति, भरतपुर के मंत्री श्री ओमप्रकाश लवानियाँ तथा पुस्तक प्रकाशन व उसे अंतिम रूप देने में श्री कृष्णनन्दन कुलश्रेष्ठ का बहुत सहयोग मिला है। उनका मैं हृदय से आभारी हूँ।

अक्षय तृतीया सम्वत् 2048 डॉ. रामरतन शास्त्री

शास्त्री भवन

52ए, संजय नगर, भरतपुर.

दो शब्द

राव राजा श्रीयदुराजसिंह जी (काकाजी) जीवन पर्यन्त साहित्य एवम् संगीत की साधना में लगे रहे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व से स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद तक श्री जसवंत प्रदर्शनी, भरतपुर में आयोजित कवि सम्मेलनों में तथा श्री हिन्दी साहित्य समिति, भरतपुर आदि साहित्यिक संस्थाओं द्वारा आयोजित कवि सम्मेलनों में आपकी महत्वपूर्ण भूमिका चिर स्मरणीय रहेगी जिसके फलस्वरूप साहित्यकारों की इस भूमि भरतपुर में साहित्य-सर्जन एवं रसास्वादन के प्रति जन चेतना थी तथा कविसम्मेलनों को व्यावसायीकरण तथा एकाधिकरण की ही वस्तु नहीं माना जाता था।

श्री काकाजी के साहित्यिक उपनाम 'रसिक छैल' अथवा 'छैल' से स्पष्ट है कि उनकी विशेषरुचि शृंगार रस में थी जैसा कि उन्होंने रस सम्बन्धी अपने एक कवित्त में लिखा भी है—"रसिक छैल" चित्त को न माते।

"ये आठों रस, सुन्दर संयोग-शृंगार सज बनाते हैं।" किन्तु उनकी शृंगार रस सम्बन्धी रचनाओं को उनके निम्नांकित दोहों के परिप्रेक्ष्य में देखना ही अधिक समीचीन होगा :—

"नहिं विद्या बल बुद्धि नहिं जानत कविता सार।
'रसिक छैल' हिय एक बल कृष्ण नाम आधार॥
हिय इच्छा मन एक है नटवर नन्द किशोर।
राधे संग विहरो सदा नित मन मन्दिर मोर।

श्री काकाजी ने खड़ी बोली हिन्दी-कविता गीत, ब्रजभाषा-कविता, लोकगीत, गज़ल आदि के रूप में विपुल साहित्य की रचना की है। आपकी केवल ब्रजभाषा-कविताओं का पृथक् से एक और ग्रन्थ प्रकाशित किया जाए तो वह ब्रजभाषा साहित्य की, इसी ग्रन्थ की तरह, एक अमूल्य निधि होगा तथा भरतपुर के साहित्यकार के ब्रजभाषा साहित्य से ब्रजभाषा-साहित्य को समृद्ध कर सकेगा। प्रस्तुत पुस्तक में प्रकाशित उनकी ब्रजभाषा की 'चीर हरण लीला' ब्रजभाषा-खण्ड काव्य है जो कि नूतन प्रयोग है। श्री काकाजी के इस साहित्य को सुरक्षित रखते हुए प्रकाशित कराने का जो कार्य उनके सुपुत्र कुँवर रघुराज सिंह ने किया है उसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं क्योंकि यह ब्रजभाषा साहित्य की सेवा है।

२४-७-८१

—गोपेश शरण 'आतुर'

रसिक छैल-व्यक्तित्व एवं कृतित्व

"जि ग्रन्थ काकाजी राव राजा यदुराज सिंह जी के 'रसिक छैल' अरु 'छैल' उपनामन कूँ सार्थक करिवेवारी सरस, मधुर अरु भावभरी रचनान कौ अनूठो संग्रह हैं। काकाजी एक रस सिद्ध कवि, ऊँचे दर्जा के शायर अरु मँजे भये संगीतज्ञ के संग-संग हम जैसेन की निगाहन में सबकछू हे, जि संकलन या बात कूँ अच्छी तरियां सिद्ध करै है। वे कवि कुल शेखर जी अरु श्री चम्पालाल जी 'मंजुल' जैसे कवि अरु कलाकारन के बहोत बड़े हिमायती हे। ब्रजभाषा, खड़ी बोली, हिन्दी, उर्दू अरु अंग्रेजी भाषान पै विनको अच्छो अधिकार हो। ठेठ ब्रजभाषा की रचना करिवे में विनको मनुआँ अधिक सुख पावै हो।

भक्तिभाव में डूबिकें काकाजी नें अपने परम आराध्य श्री राधाकृष्ण की मधुर लीलान कौ अत्यन्त सरस वर्नन कीनों है। लोक-गीत अरु समस्यापूर्त्तीन सौं लैकें शृंगार रस के संयोग अरु वियोग दोनूँ पक्षन की रचना करिवे में विनकी लेखनी खूब रमी है। नायक नायिका अरु प्रकृति वर्नन के विनके कवित्त अरु सवैया रीतिकाल के ऊँचे ते ऊँचे कवि सौं टक्कर लैवे वारे हैं।

शृंगार रस के संग-संग नीति अरु वैराग्य के छन्दन के छींटन्नें या ग्रन्थ की छटा में चारि चाँद लगाइ दीने हैं। कहूँ-कहूँ विनके ब्रजभाषा गद्य की बानिगी हू दीखि परै है।

थोरे से में पूछो तो यामें काकाजी के अनुभवन को निचोड़ है अरु रसिक छैल के हिरदे की छैलता अरु भावुकता या मांहि छलकी परै है।

या ग्रन्थ प्रकाशित अरु मुद्रित कराइवे के ताईं भैया कुँ॰ रघुराज सिंह जी, सम्पादक डॉ॰ रामरतन शास्त्री अरु श्री कृष्ण-नन्दन कुलश्रेष्ठ सांच मांच बधाई अरु साधुवाद के पात्र हैं।

—मोहनलाल मधुकर
अध्यक्ष

राजस्थान ब्रज भाषा अकादमी
१६, आदर्श कोलोनी, भरतपुर।

दिनांक २८-७-९१

"जगात काका कहाँ गये ?"

[] वनयसिंह

काका यदुराज सिंह जी से मेरा परिचय जब मैं सातवीं कक्षा में पढ़ता था तब १९४७ में हुआ। काकाजी को सम्भवतः यह विदित था कि मैं लोक-गीत गायक हूँ। आपने मुझ ब्रज की कोई भी रसिया गाने को कहा। मैंने आपके आदेशानुसार एक प्रचलित रसिया "उड़ँगो भौंरा बागन को, तेरो कोई न साथी होय" सुनादी। आपने रसिया की सराहना करते हुए मुझ अपने शिष्य की तरह जीवनभर समझा। मेरा आपके महल पर आना जाना शुरू हो गया और आये दिन शाम को आपके द्वारा लिखित या रचित लोक गीतों को ताल-स्वर में बांधकर कठस्थ कर लिया। इसे मैं अपना सौभाग्य ही कहूंगा कि आपके द्वार, लिखित कितने ही लोक गीतों को आकाश-वाणी दिल्ली और जयपुर से मैंने गाया। आकाशवाणी पर मेरे द्वारा गाये गये गीत और लोक गीतों की आपने सराहना की और मुझे उत्साहित किया।

आज भी काकाजी द्वारा रचित एक लोक गीत मेरी जबान पर रहता है। गीत है "एक पनियां भरन को चुपके-२ चली रे गांव की छोरी" यह गीत ऐसा प्रचलित हुआ कि भरतपुर के ही रंग-मंचों पर नहीं समूचे राजस्थान के रंग-मंचों पर नृत्य के साथ प्रस्तुत किया गया। आपके द्वारा लिखित रसिया "विष बांधे चँदुरिया की घोर बलम तुम पै मर जाऊँगी" ब्रज क्षेत्र में बहुत ही प्रचलित है। रसिया के दीवाने आज भी इस रसिया को सुनने को ललाइत रहते हैं। आपके द्वारा ही लिखित रसिया "सांची बात बतायदै बलमा, तैनें कहां बिताई रात" को सुनकर लोग आश्चर्य चकित होते हैं।

ऐसा देखने, सुनने और पढ़ने में कम ही आता है कि एक कुशल खिलाड़ी व्यक्ति उच्च कोटि का संगीतज्ञ एवं साहित्यिक रहा हो। आपने न जाने कितनी ही कविता, गजल, गीत, शेर शायरी और रसियों की रचना की। मुझे भारी प्रसन्नता है कि मेरे निरन्तर

२० वर्ष मे आग्रह करने पर काका जी के एक मात्र सुपुत्र श्री रघुराज सिंह जी ने उपरोक्त सामग्री का संग्रह करके एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने का सराहनीय कार्य किया है। राष्ट्रीय स्तर के कितने ही कवि सम्मेलनों की आपने समय-समय पर अध्यक्षता की आपने कितने ही राष्ट्रीय मुशायरों की सदारत की। आप उच्च कोटि के साहित्यक व्यक्ति तो थे ही किन्तु सर्वोच्च कोटि के संगीतज्ञ भी थे। ऐसा कोई देशी और विदेशी साज न था जो काका जी के पास न हो और उसे बजाने में दक्षता प्राप्त न की हो।

ढोलक, तबला, नगाड़ा, नाल और मृदंग पर जब आपके हाथ थिरकते थे तो लोगों की जबान पर वाह-वाह का स्वर ही सुनाई देता था। आप बांसुरी, सैक्सोफोन, क्लारानेट दिलरुबा, गिटार, वायलिन, सारंगी, सितार और हारमोनियां बजाने में अपना स्थान रखते थे। विदेशी साज खानों के तो आप राजस्थान के जाने माने कलाकार थे। अगर मैं यह कहूँ कि मेरी नजर में ऐसा कोई साज नही था कि जिसे काका जी बखूबी से न बजाते थे तो कोई अतिशियोक्ति नहीं होगी। खेल की दुनियां में जिन लोगों को काका जी को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, वे आज भी काकाजी की अगाध प्रशंसा करते नही थकते हैं। आप बिलियर्ड्स के चैम्पियन थे, टैनिस के कप्तान थे। हाकी, फुटबाल, बोलीबाल, क्रिकिट, बैटमिन्टन, राउन्डर, स्कोच एवं देशी खेल काई डंडा और कबड्डी के धुरंन्धर (कुशल) खिलाडी थे। निशाने (Shooting) में भरतपुर रियासत के समय कर्नल सवाई श्री ब्रजेन्द्र सिंह महाराजा को छोड़कर अपना सर्वोच्च स्थान कायम रखते थे। ऐसे थे हरफन मौला हमारे काका जी।

आज काकाजी हमारे बीच में नही हैं लेकिन उनकी मधुर स्मृतियाँ आज भी हमारे मन मस्तिष्क पर अमिट छाप की तरह से अंकित हैं।

मैं अपने को भाग्यशाली समझता हूँ कि ऐसे महापुरुष की संगत मे रहने का लगभग दो दशक तक मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ। आपकी चिर स्मरणीय स्मृति में 1971 से कला मन्दिर के विद्या भवन में निरन्तर होली के पावन पर्व पर चौदवी के चाँद की रोशनी में मेरी आप से अगाध श्रद्धा होने के कारण "यदुराज स्मृति निशा" का आयोजन सम्पन्न होता आ रहा है। चौदवी की रात को नाच,

गाना और खाना एवं बृज की होलियों का गाया जाना इस कायक्रम की विशेपता है भरतपुर के मेरे गण मान्य इष्ट-मित्र ही नहीं इस रात को दिल्ली, लखनऊ, आगरा, मथुरा, जयपुर और दूर-दूर से प्रेमी लोग कार्यक्रम की शोभा बढ़ाने आते हैं। उपरोक्त कार्यक्रम में महाराजा भरतपुर, स्व० बाबू राजबहादुर जी कैप्टिन चौ० भगवान सिंह, श्री राजेश पायलट, कुं० विश्वेन्द्र सिंह, अजयसिंह और स्थानीय जिला कलैक्टर, डी. आई. जी., एस. पी. और प्रशासन के अन्य अधिकारीगण सैकड़ों की संख्या में समय-समय पधार कर कार्यक्रम की शोभा बढ़ाते रहे हैं।

अगर सम्भव हुआ तो काकाजी पर दूरदर्शन की स्वीकृति मिलने पर एक निश्चित रूप से सीरियल तैयार किया जायगा।

अन्त में मैं पुनः इस पुस्तक के प्रकाशन पर भैय्या रघुराज सिंह और उनकी पत्नी पद्मकौर (रीता) जी को बधाई देता हुआ अति सराहना करता हूँ।

—

गाना और खाना एवं वृज की होलियों का गाया जाना इस कायक्रम की विशेषता है भरतपुर के मेरे गण मान्य इष्ट-मित्र ही नहीं इस रात को दिल्ली, लखनऊ, आगरा, मथुरा, जयपुर और दूर-दूर से प्रेमी लोग कार्यक्रम की शोभा वढ़ाने आते हैं। उपरोक्त कार्यक्रम में महाराजा भरतपुर, स्व० वावू राजवहादुर जी कैप्टिन चौ० भगवान सिह, श्री राजेश पायलट, कुँ० विश्वेन्द्र सिह, अजयसिह और स्थानीय जिला कलैक्टर, डी. आई. जी., एस. पी. और प्रशासन के अन्य अधिकारीगण सैकड़ों की संख्या में समय-समय पधार कर कार्यक्रम की शोभा वढ़ाते रहे हैं।

अगर सम्भव हुआ तो काकाजी पर दूरदर्शन की स्वीकृति मिलने पर एक निश्चित रूप से सीरियल तैयार किया जायगा।

अन्त में मैं पुनः इस पुस्तक के प्रकाशन पर भैय्या रघुराज सिह और उनकी पत्नी पद्मकौर (रीता) जी को वधाई देता हुआ अति सराहना करता हूँ।

—

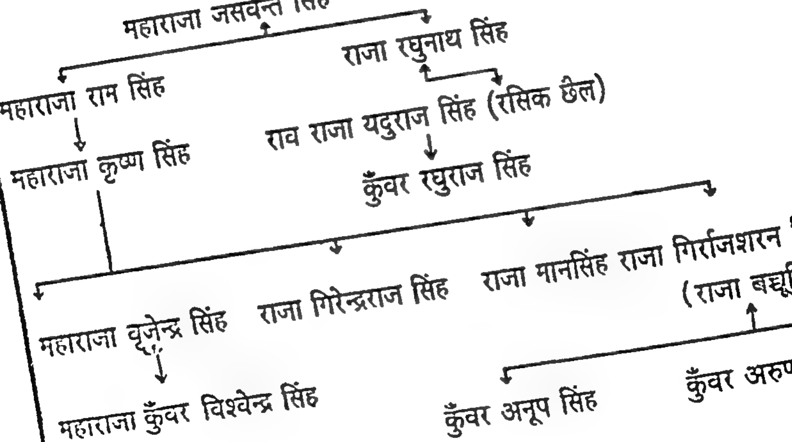
भरतपुर राज-परिवार



From : Hendleys Rulers of India & the Chiefs of Rajputana Edition.
1897 London.

भरतपुर राज परिवार
वंशावली

	राज्यकाल
राजा वदन सिंह	-
महाराजा सूरजमल	1763
महाराजा जवाहर सिंह	1765
महाराजा रतन सिंह	-
महाराजा केसरी सिंह	1785
महाराजा रन्जीत सिंह	1805
महाराजा रन्धीर सिंह	1823
महाराजा वल्देव सिंह	1825
महाराजा बलवन्त सिंह	1853



(वंशावली भरतपुर राजपरिवार उद्धृत थोमसन वेरी हेन्डले की पुस्तक से (
(लन्दन) स्टेट आफ राजपूताना 1150 to 1
आर० आई० वी० डी०)
पुस्तक से)



राजा रघुनाथ सिह जी
1886—1943

(राव राजा यदुराज सिह जी के पिता जिनके चरणो में बैठकर काकाजी को लिखने की प्रेरणा मिली ।)

अनुक्रमणिका

राव राजा यदुराज सिंह 'रसिक छैल'

जीवन परिचयः—

भगवती शारदा देवी वरदान स्वरूप तपः पूतों को इस भूतल पर अवतरित कर अपने साहित्यिक कोष में अभिवृद्धि करके ज्ञान-विज्ञान से परिपूर्ण करती रहती हैं। यह उनकी जीवों पर की गई एक विशेष अनुकम्पा ही होती है। बुद्धिमान प्राणी इस प्रसाद को पाकर आनन्दातिरेक से मग्न हो उठता है। आदि कवि बाल्मीकि से से लेकर अद्यतन कितनी ही प्रतिभाएँ उस प्रसाद को प्राप्त करके भूलोकवासी प्राणियों को सत्यं-शिवं और सुन्दरम् का ज्ञान देती रही हैं। काव्य और संगीत ये दो ऐसी विशिष्ट विधाएँ हैं जिनसे सरसता की मधुर लहर के साथ-साथ जीवन मूल्यों को समझने का सरस मार्ग भी प्राप्त होता है। सरस संगीतमय शैली में हृदय को आह्लादित करने वाले हिन्दी के विशिष्ट कवियों की एक शृंखला में नये व्यक्तित्व का प्रादुर्भाव हुआ। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में जो कि राजघराने के विलासी जीवन में भगवती शारदा के आत्म विलास को प्रस्तुत करने के लिए ही इस भूमण्डल पर अवतरित हुए। उस काव्य प्रतिभा के धनी का नाम है रावराजा यदुराज सिंह।

भरतपुर के राज परिवार पर वाइदेवता की बहुत कृपा रही है। यहाँ उच्चकोटि के अनेक कवियों को प्रश्रय प्राप्त रहा है। इसी राज परिवार में कवि 'रसिक छैल' जिसका नाम यदुराज सिंह था का जन्म हुआ। उन्हें 'काका जी' के नाम से भी सम्बोधित किया जाता था क्योंकि वे महाराजा बृजेन्द्र सिंह के 'काका जी' (बृज में पिता के छोटे भाई को काका कहा जाता है) थे।

जन्म समय व स्थान

कवि 'रसिक छैल' का जन्म ३० नवम्बर सन् १९१२ को भरतपुर राज परिवार के सेवर स्थित महलों में हुआ। ये महल

भरतपुर-जयपुर मार्ग पर भरतपुर से दक्षिण दिशा की ओर ४ कि.मी. की दूरी पर स्थित है। आजकल यहाँ पर सेना की एक बटेलिन निवास करती है।

वंश-परिचय :—

कवि 'रसिक छैल' का नाम यदुराज सिंह था। वे महाराजा जसवन्तसिंह के पौत्र थे। उनके पिता का नाम श्री राजा रघुनाथ सिंह था और माता का नाम-श्रीमती मोहनकौर। उनका वंश-वृक्ष इस प्रकार दर्शाया जा सकता है।

वंश वृक्ष देखिए—

शिक्षा :—

कुँ० यदुराज सिंह की शिक्षा राजवंश की परम्परा के अनुसार विशिष्ठ विद्यालयों में ही प्रारम्भ की गई। बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि होने के कारण वे उच्च श्रेणी से उत्तीर्ण होते रहे। तत्कालीन राजवंश की शिक्षा व्यवस्था के अनुसार इन्हें मेयो कालेज अजमेर तो नहीं भेजा जा सका किन्तु सेन्टपीटर कॉलेज आगरा से उन्होंने कक्षा १० की परीक्षा उत्तीर्ण की। अपने पिता के इकलौते पुत्र होने के कारण उनको आगे पढ़ने से विमुख रहना पड़ा क्योंकि घर खेती आदि की व्यवस्था भी उन्हें ही देखनी पड़ी।

शिक्षा क्रम के साथ-साथ उन्होंने खेलकूद शस्त्र चलाना आदि का अभ्यास भी कुशलता पूर्वक किया। और उसमें विशिष्ट ख्याति भी प्राप्त की। वे टैनिस, बिलियर्ड तथा फुटबॉल के श्रेष्ठ खिलाड़ी रहे तथा अपनी स्वयं की निजी टीम बनाकर राजपूताना की अनेक टीमों में विजयी रहे। एक श्रेष्ठ खिलाड़ी की भावनात्मक रंगों में संगीत की रुचि कब और कैसे जागृत हो गई यह जानना मुश्किल है। अंग्रेजी शासन से प्रभावित राजपरिवार अंग्रेजियत सभ्यता की अन्तिम श्वासें ले रहा था। सर्वत्र स्वराज्य की माँग हो रही थी। ऐसे संक्रान्ति काल में अपने पितृ श्री से हिन्दी व बृजभाषा का महत्व जानकर उन्होंने बृजभाषा में साहित्य रचना करने का विचार बनाया। वंश परम्परा के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण उनके इष्टदेव थे। श्रीकृष्ण और बृज दोनों ही एक साथ हृदय में इस प्रकार समा

गये कि उन्हें प्राप्त करने की व्यग्रता ने इष्टदेव के विशिष्ट चरित्रों का चित्रण बृजभाषा के माध्यम से स्वतः ही प्रस्फुटित करा दिया और साहित्य-गंगा की पवित्र धारा प्रवाहित हो उठी। भारतीय संस्कृति और सभ्यता का प्रभाव उनके जीवन पर छा गया। साहित्य रचना और संगीत जीवन के अंग बन गये। रचनाकारों का उचित सम्मान एवं संगीत की मधुर-ध्वनियों से वातावरण गुंजित होने लगा।

विवाह :—

कुं० यदुराज सिंह का विवाह जुलाई १९३६ में जिला अलीगढ़ (उत्तर-प्रदेश) की खैर तहसील के एक ग्राम घरबरा के एक श्रेष्ठ ठिकानेदार की पुत्री हरेन्द्रकौर के साथ हुआ। उनका दाम्पत्य जीवन बहुत अच्छा रहा। कुल चार सन्तान दाम्पत्य जीवन को आनन्दित करती रहीं। इनमें से सबसे छोटे पुत्र का आकस्मिक निधन हो गया। शेष तीन यदुवंश कुमारी, व्रजचन्द कुमारी और रघुराजसिंह पूर्ण सम्पन्नता के साथ अपना जीवन निर्वाह कर आनन्द प्राप्त कर रहे हैं।

साहित्य साधना :—

हिन्दी व बृजभाषा के प्रति अगाध निष्ठा ने उनको हिन्दी साहित्य समिति के गठन की ओर प्रेरित किया। समय-समय पर काव्य गोष्ठी कराने की योजनायें मस्तिष्क का विलास बन गई। बृजभाषा की मधुर शैली में बृज लोक-गीत तथा अनेक छन्दों में अपने विचारों को प्रकट किया। शृंगार उनका प्रिय रस रहा है। शृंगार रस के विषय में आपका कथन है—

> 'रसिक छैल' चित्त को भाते ये आठों रस,
> सुन्दर संयोग शृङ्गार सज बनाते हैं।''

शृंगार के दोनों पक्ष (संयोग तथा वियोग) पर उनकी रचनायें प्राप्त होती हैं। यद्यपि उन्होंने कोई महाकाव्य तो नहीं लिखा किन्तु बृज-विलास के लिए सम्भाव्य सभी परम्पराओं की रचनायें उनके द्वारा लिखी गई। ऋतु वर्णन में समस्त ऋतुओं के सजीव चित्रण

मिलते हैं। होरी वृज का पवित्र त्यौहार माना गया है। रासलीलायें और होरी ये दोनों वृज क्षेत्र की श्रेष्ठ देन हैं। चन्द्रावलि लीला, चीर हरण लीला तथा होरी के विविध पहलुओं पर लिखे गये उनके छन्द हृदय को परम आह्लादित तो करते ही हैं साथ ही वृज की पवित्र भावना से भी परिचित कराते हैं। उन्होंने अपनी रचना 'रसिक छैल' के नाम से लिखीं।

श्री यशवन्त प्रदर्शिनी के अवसर पर होने वाले कवि सम्मेलन के संयोजक के रूप में भी उन्होंने कई कई वर्षों तक कार्य किया। राजपरिवार से सम्बद्ध व्यक्ति खुले मंच पर अपने मधुर कण्ठ से साज-वाज के साथ जब गीत सुनाने लगता तो अपार श्रोता-समूह गद्गद् हो उठता था।

शृंगार रस को प्रधान रस मानते हुए भी कवि रसिक छैल ने सभी रसों का आस्वादन प्रदान किया है। समस्या पूर्ति तथा सामयिक माँगों पर अनेक छन्द लिखे हैं। 'मानवता की पुकार, अपना-अपना दृष्टिकोण आदि अनेकों सामयिक रचनायें हैं जो अपनी गहरी छाप श्रोता के मनस पटल छोड़ती हैं। एक सौ से अधिक धनाक्षरी छन्दों में विविध विविध विषयों को अत्यन्त सरसता से वर्णित किया है। और तो और प्रसिद्ध लोकोक्तियों तथा मुहावरों को काव्यात्मक रूप देकर सरस वना देना उनकी काव्य प्रतिभा का ज्वलन्त उदाहरण है। गजल और शेर लिखकर उन्होंने उर्दू शायरी की अपनी रुचि को वहुत रोचकता से प्रकट किया है।

आकाशवाणी देहली एवं मथुरा से अनेक वार उनकी कवितायें व गीत प्रसारित किये जाते रहे हैं। वृज माधुरी कार्यक्रम के तो वे मूर्धन्य गीतकार रहे हैं।

संगीता साधना :—

संगीत की शिक्षा उन्हें पटियाला घराने के उस्ताद हसीन मुहम्मद के द्वारा प्राप्त हुई। उनकी संगीत के प्रति जाग्रत जिज्ञासा एवं सतत प्रयत्नशीलता ने संगीत की गहराइयाँ प्राप्त कीं और थोड़े ही समय में सभी प्रकार के साज-वाज वजाना सीख गये। इतना

ही नही एक अच्छे संगीतकार के रूप में उभर कर सामने आये। संगीत सम्मेलनों की अनेक बार अध्यक्षता करने के कारण देश के विशिष्ट संगीतकार उनके निकट आने लगे जिससे राज भवन संगीत की मधुर ध्वनि से गूंजने लगा। सभी प्रकार के साज खरीदने और उन पर विविध प्रकार की संगीत विधाओं को निकाल कर अभ्यास कराना उनकी दिनचर्या बन गया था। आज भी वे सभी वाद्य-यन्त्र उनके निजी कक्ष में सुरक्षित हैं।

किसी सभा या सम्मेलन में किसी अन्य गीतकार से कोई गीत सुना तो वे उसको लिखवा लिया करते थे और संगीत में सुर-बद्ध किया करते थे। सीखने में उनका भाव सर्वथा ही विनम्र रहता था।

आखेट :—

आखेट एवं शस्त्र विद्या में भी उनकी रुचि बहुत थी। एक उच्चकोटि के निशाने बाज एवं शिकारी के रूप में आज भी उन्हें स्मरण किया जाता है। एक सहृदयी व्यक्ति शिकार के प्रति इतना जागरूक रहे, यह बड़े ही आश्चर्य का विषय है। यह प्रवृत्ति उन्हें अपने राजसी परिवार के पैतृक गुणों से प्राप्त हुई।

व्यक्तित्व :—

उपर्युक्त समस्त गुणों के आधार पर उनके व्यक्तित्व में एक विशेष झलक देखने को मिलती है कि साहित्य, संगीत और आखेट की निरन्तर साधना ने उनके जीवन को मधुर भाषी एवं सरल स्वभाव वाला बना दिया। यद्यपि राजघरानों में पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव विद्यमान था किन्तु यह संस्कृति उनके व्यक्तिगत जीवन को स्पर्श भी नहीं कर सकी। प्राप्त काव्य रचनाओं से उनका व्यक्तित्व स्पष्ट झलकता है तदनुसार वे एक मस्त तबियत के शौकीन एवं रंग मिजाजी व्यक्ति रहे हैं। धनाभाव की आर्थिक परेशानियों को भी उन्होंने किंचित रूप में स्वीकार नहीं किया। साधना के प्रति तल्लीनता ही उनके जीवन का लक्ष्य रहा है।

अन्तिम विदा :—

ब्रज भाषा के अनन्य साधक एवम् संगीतकार इस महान विभूति का निधन ८ मई १९७० को हुआ।

मिलते हैं। होरी वृज का पवित्र त्यौहार माना गया है। रासलीलायें और होरी ये दोनों वृज क्षेत्र की श्रेष्ठ देन हैं। चन्द्रावलि लीला, चीर हरण लीला तथा होरी के विविध पहलुओं पर लिखे गये उनके छन्द हृदय को परम आह्लादित तो करते ही हैं साथ ही वृज की पवित्र भावना से भी परिचित कराते हैं। उन्होंने अपनी रचना 'रसिक छैल' के नाम से लिखीं।

श्री यशवन्त प्रदर्शिनी के अवसर पर होने वाले कवि सम्मेलन के संयोजक के रूप में भी उन्होंने कई कई वर्षों तक कार्य किया। राजपरिवार से सम्बद्ध व्यक्ति खुले मंच पर अपने मधुर कण्ठ से साज-बाज के साथ जब गीत सुनाने लगता तो अपार श्रोता-समूह गद्‌गद् हो उठता था।

शृंगार रस को प्रधान रस मानते हुए भी कवि रसिक छैल ने सभी रसों का आस्वादन प्रदान किया है। समस्या पूर्ति तथा सामयिक माँगों पर अनेक छन्द लिखे हैं। 'मानवता की पुकार, अपना-अपना दृष्टिकोण आदि अनेकों सामयिक रचनायें हैं जो अपनी गहरी छाप श्रोता के मनस पटल छोड़ती हैं। एक सौ से अधिक धनाक्षरी छन्दों में विविध विविध विपयों को अत्यन्त सरसता से वर्णित किया है। और तो और प्रसिद्ध लोकोक्तियों तथा मुहावरों को काव्यात्मक रूप देकर सरस बना देना उनकी काव्य प्रतिभा का ज्वलन्त उदाहरण है। गजल और शेर लिखकर उन्होंने उर्दू शायरी की अपनी रुचि को बहुत रोचकता से प्रकट किया है।

आकाशवाणी देहली एवं मथुरा से अनेक बार उनकी कवितायें व गीत प्रसारित किये जाते रहे हैं। वृज माधुरी कार्यक्रम के तो वे मूर्धन्य गीतकार रहे हैं।

संगीता साधना :—

संगीत की शिक्षा उन्हें पटियाला घराने के उस्ताद हुसैन मुहम्मद के द्वारा प्राप्त हुई। उनकी संगीत के प्रति जाग्रत जिज्ञासा एवं सतत प्रयत्नशीलता ने संगीत की गहराइयाँ प्राप्त कीं और थोड़े ही समय में सभी प्रकार के साज-बाज बजाना सीख गये। इतना

ही नहीं एक अच्छे संगीतकार के रूप में उभर कर सामने आये। संगीत सम्मेलनों की अनेक बार अध्यक्षता करने के कारण देश के विशिष्ट संगीतकार उनके निकट आने लगे जिससे राज भवन संगीत की मधुर ध्वनि से गूंजने लगा। सभी प्रकार से साज खरीदने और उन पर विविध प्रकार की संगीत विधाओं को निकाल कर अभ्यास कराना उनकी दिनचर्या बन गया था। आज भी वे सभी वाद्य-यन्त्र उनके निजी कक्ष में सुरक्षित हैं।

किसी सभा या सम्मेलन में किसी अन्य गीतकार से कोई गीत सुना तो वे उसको लिखवा लिया करते थे और संगीत में सुर-बद्ध किया करते थे। सीखने में उनका भाव सर्वथा ही विनम्र रहता था।

आखेट :—

आखेट एवं शस्त्र विद्या में भी उनकी रुचि बहुत थी। एक उच्चकोटि के निशाने बाज एवं शिकारी के रूप में आज भी उन्हें स्मरण किया जाता है। एक सहृदयी व्यक्ति शिकार के प्रति इतना जागरूक रहे, यह बड़े ही आश्चर्य का विषय है। यह प्रवृत्ति उन्हें अपने राजसी परिवार के पैतृक गुणों से प्राप्त हुई।

व्यक्तित्व :—

उपर्युक्त समस्त गुणो के आधार पर उनके व्यक्तित्व में एक विशेष झलक देखने को मिलती है कि साहित्य, संगीत और आखेट की निरन्तर साधना ने उनके जीवन को मधुर भाषी एवं सरल स्वभाव वाला बना दिया। यद्यपि राजघरानों में पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव विद्यमान था किन्तु यह संस्कृति उनके व्यक्तिगत जीवन को स्पर्श भी नहीं कर सकी। प्राप्त काव्य रचनाओं से उनका व्यक्तित्व स्पष्ट झलकता है तदनुसार वे एक मस्त तबियत के शौकीन एवं रंग मिजाजी व्यक्ति रहे हैं। धनाभाव की आंशिक परेशानियों को भी उन्होंने किंचित रूप में स्वीकार नहीं किया। साधना के प्रति तल्लीनता ही उनके जीवन का लक्ष्य रहा है।

अन्तिम विदा :—

ब्रज भाषा के अनन्य साधक एवम् संगीतकार इस महान विभूति का निधन ८ मई १९७० को हुआ।

रसिक छैल काव्य : एक विवेचन :

कवि रसिक छैल की काव्य रचनायें ब्रज क्षेत्र में अधिक प्रवाहित हैं। वे ब्रजवासी थे और ब्रज नन्दन भगवान श्रीकृष्ण उनके आराध्य देव। अपने छैल-छवीले आराध्य देव की आराधना में उनकी प्रेम लीलाओं का साकार वर्णन करना ही कवि का अभीष्ट रहा है अतः उनकी रचनायें ब्रज की विविध गीत शैलियों से परिपूर्ण हैं। ब्रज के रसिया, लावनी, भजन, दोहे, सोरठे, सवैय्ये तथा कवित्त उनकी वाणी को मुखरित करने में सक्षम रहे हैं।

कवि रसिक छैल की कवितायें गीत-काव्य की श्रेणी में आती हैं। भगवान श्री कृष्ण की विविध लीलायें संयोग व विप्रलम्भ शृंगार, नायक-नायिका भेदों का निरूपण, प्रकृति वर्णन तथा जीवन मूल्यों का विशद वर्णन उनके काव्य में स्पष्ट रूप से सजीव हो उठा है। प्रेम के विविध रूपों को दर्शाने में उनका काव्य कौशल बहुत उभरा है। काव्य के इन विविध रूपों का विवेचनात्मक अध्ययन इस संकलन के भूमिका भाग में दर्शाया गया है।

रसिक छैल के काव्य संग्रह को दो भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम भाग में उनके आंचलिक गीत हैं। जो संगीत की ध्वनि पर आधारित हैं। ब्रज लोक-गीतों का अपना एक विशेष महत्त्व होता है। अनेकों सुर, ताल और लय से युक्त ये लोक-गीत श्रोताओं को मुग्ध करते रहे हैं। द्वितीय भाग में उनके छन्दों का संग्रह है। अधिकांश छन्द शृंगार से परिपूर्ण हैं। इनमें अपने आराध्य देव भगवान श्री कृष्ण की लीलाओं का भी बहुत सरस वर्णन किया गया है।

बहु आयामी काव्य प्रतिभा के धनी कवि रसिक छैल ने ब्रज, श्रीकृष्ण और ब्रजवासियों को जितनी निकटता से देखा और उस दृष्ट भावना में बैठकर जो अनुभव किया वह कवि-मनीषा का उत्कृष्ट रूप है। श्रीकृष्ण का माधुर्यरूप सर्वत्र भक्ति भावनाओं के साथ व्याप्त होकर ब्रज-भूमि को माधुर्य से युक्त कर देता है। इस माधुर्य का सर्व व्याप्त रूप ब्रज के लोक गीतों में विद्यमान रहता है। ये लोकगीत भक्तों के मन में स्वतः आनन्द की अनुभूति पैदा कर

उन्हें कृष्णमय बना देते हैं। विषय ग्राह्यता की दृष्टि से जिन विषयों के कवि ने अपनी काव्य मुखरता का हेतु माना है उनमें निम्न लिखित प्रसंग विशेष उल्लेखनीय हैं—

1. आंचलिक गीत
2. प्रेम का स्वरूप
3. नायक निरूपण
4. नायिका निरूपण
5. बांसुरी
6. सामयिक यथार्थ
7. ब्रज होली
8. प्रकृति वर्णन और
9 जीवन मूल्य

आंचलिक गीत–कवि रसिक छैल के काव्य हृदय में आंचलिक गीतों का एक सरस प्रवाह स्वतः ही निस्पन्द होता रहा है। इस काव्य प्रौढ़ता की पृष्ठभूमि में उनका सरस जीवन और काव्य गोष्ठियों में सह भागिता ही मूल कारण बनी हुई है। कवि हृदय तो ईश्वरीय देन होती है उनमें छन्दों अथवा गीतों का प्रभाव नित्य अभ्यास तथा कवि का वह परिसर जिसमें उसका जीवन्त स्वरूप विद्यमान रहता है, के कारण उपज कर पल्लवित बनता है। 'रसिक छैल' का सामन्ती जीवन इस परिसर का मूल स्रोत बना जहाँ सधे हुए शास्त्रीय संगीत के साधकों से लेकर लोक-गीत और आंचलिक गीतों तक के विशिष्ट कलाकार आ-आकर अपनी रचनाओं का आस्वादन कराते रहे। इन आंचलिक गीतों में जीवन का उत्कृष्ट स्वरूप उभर कर सामने आता है। सयोग शृंगार के तो ये चित्रात्मक काव्य हैं। एक विश्रुत गीत दृष्टव्य है–

मत मारे नजरिया के बान,
बलम मोरे लग जइ हैं।
॥ १ ॥
बड़े-बड़े कजरारे प्यारे,
इनकी अनोखी बान
बलम मोरे लग जइ है।

पल पल पलक पेंतरा पलटत,
भोहें बनी हैं कमान।
बलम मोरे लग जइ है।
झुक झूमें जी में अर जइ हैं,
ये सब गुन की खान।
बलम मोरे लग जइ हैं।
'छैल' छिपे घूंघट के पट माँ,
करि हों चोट महान।
बलम मोरे लग लइ हैं।

इस गीत में नेत्रों को बाण के रूप में प्रस्तुत किया है। सुन्दर नेत्रों के विविध लक्षणों को बहुत सुन्दर ढंग से उभारा गया है। कजरारे होना, सौन्दर्य को ग्रहण करने की शक्ति, भावों के अनुसार परिवर्तन, कमान के समान भौहें, शालीनता से झुके हुए होना, हृदय में प्रवेश करने की शक्ति तथा प्रेम की भावनाओं के साथ प्रेमिका पर अपना प्रभुत्व जमाना ये सभी गुण सुन्दर नेत्रों में विद्यमान रहते हैं। प्रेम-प्रसंग के माध्यम से नेत्रों के लक्षणों का इस रूप में उभरना कवि की काव्यसृजनता का सुन्दर उदाहरण है।

आंचलिक लोक-गीतों का क्षेत्र भरतपुर, डीग, कामाँ, मथुरा तथा उसके आस-पास के सभी गेय-गीतों का क्षेत्र रहा है। जहाँ ब्रज संस्कृति का जीवन्त स्वरूप देखने को मिलता है। इन आंचलिक लोक-गीतों में होरी के अवसर पर गाये जाने वाले गीत बहुत मार्मिक हैं। यथा–

मैं तो सोय रही सपने में,
मो पै रंग-डार गयो नन्दलाल।
सपने में श्याम मेरे घर आये,
ग्वाल बाल कोऊ संग न लाये।
अजी पौढ़ गयौ पलका पै मेरे संग,
देखन लाग्यौ मेरे अंग-अंग॥
दई पिचकारी भर-भर तंग,
पिचकारी के लगत ही,
मोरे मन में उठी तरंग॥

प्रेम का स्वरूप—प्रेम भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों रूपों में किया जाता है। परमेश्वर के साथ प्रेम का स्वरूप भिन्न होता है और इष्टदेव के साथ भिन्न। परमेश्वर की सत्ता में प्रेम हो जाने से व्यक्ति को आत्म ज्ञान होने लगता है। इष्टदेव में प्रेम होने पर साधक एक विशिष्ट आनन्द का अनुभव करने लगता है। किन्तु भौतिक शरीर के साथ प्रेम का विचार भिन्न हो जाया करता है। प्रणय पथिक अपने दुर्धर प्रणय पथ पर अनेक कष्टों को झेलता हुआ इसलिए निरन्तर अग्रसर होता है कि उसे मिलन की एक चाह रहती है। 'एक ऐसे ही 'प्रणय पथिक' का वर्णन करते हुए कवि वर लिखते हैं—

चल रहा है पथिक दुर्धर,
प्रणय के इस प्रेम पथ पर।
है अनिश्चित समय जिसका,
और ना विश्राम पल भर॥
पूर्ण अब भी कंटकों से,
ठोकरें पग पग पे खाता।
शून्य पथ की शून्यता को,
करुण क्रन्दन से लगाता॥
हो विकल अधखुले नयनों,
से बहाता अश्रु झर झर।
तज दिये आराम भोजन,
जल नहीं इसने पिया है।
नाम लेकर प्रेयसी का,
प्रेम के पथ में जिया है।
ग्रीष्म को उत्ताप झेली,
शीत का हिम अपने तन पर।
चरण डग मग कर रहे हैं,
श्वांस है रुक-रुक के आती।
शब्द अस्फुट हैं निकलते,
और देही थरथराती॥

आत्म बल के ही भरोसे,
छैल बढ़ता है निरन्तर ।

समग्र भाव से समर्पण ही सच्चा प्यार कहलाता है।

मेरा दुनियाँ में सब कुछ तेरा प्यार है।
तू जहाँ भी रहे मेरा संसार है ॥

जब प्यार की भीषण ज्वाला हृदय में धधकती है तो प्रेमी संसार के बंधनों को भी तोड़ देता है।

मैंने घर बार छोड़ा है तेरे लिए।
जग से मुखड़ा भी मोड़ा है तेरे लिए ॥

नायक निरूपण

काव्य-रचना की कथा-वस्तु उसके पात्रों द्वारा वर्णित की जाती है। इस कथावस्तु के मध्य अनेक पात्र समाहित होते हैं। श्रोता या पाठक इन पात्रों में से किसी न किसी पात्र के गुणों अथवा व्यक्तिगत संस्कारों से अपने आपका सामञ्जस्य अवश्य बैठाता है। उसके अपने संस्कार उस पात्र के संस्कारों से साम्य रखते हैं। यही कारण है कि श्रोता या पाठक उस काव्य के अङ्गीभूत रस का रसास्वादन करता रहता है। पात्रों में प्रमुख पात्रता नायक और नायिका की होती है। कवि उत्तम और मध्यम प्रकृति के लोगों को ही इसके लिए चुनता है। नायक की सबसे प्रमुख विशेषता उसका धैर्य है। वह सर्वदा साम्यभाव से अपना जीवन व्यतीत करता है। उदात्तता, उद्धतता, ललितता और शान्तता यह स्वभाव चातुर्विध्य पृथक्-पृथक् रूप से नायक में वर्णित हुआ करता है। धीरता के समन्वयात्मक रूप से ये नायक चार प्रकार के माने गये हैं—

1. धीरोदात्त
2. धीरोद्धत
3. धीरललित और
4. धीरप्रशान्त

धीरोदात्त नायक—आचार्य विश्वनाथ ने धीरोदात्त नायक के लक्षण प्रस्तुत करते हुए लिखा है–[1]

> अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः ।
> स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः ॥

अर्थात्–आत्मश्लाघा की भावनाओं से रहित, क्षमाशील, अति गम्भीर, दुःख-सुख में प्रकृतिस्थ, स्वभावतः स्थिर और स्वाभिमानी किन्तु विनीत स्वभाव वाला नायक धीरोदात्त नायक होता है ।

कविशिरोमणी 'रसिक छैल' ने अपने काव्य की प्रौढ़ता हेतु स्वतन्त्र रूप से धीरोदात्त नायक का वर्णन किया है । यद्यपि उन्होंने कोई महाकाव्य की रचना तो नहीं की जिसके लिए विशिष्ट नायक का चयन करना पड़े किन्तु अपने शास्त्रीय ज्ञान को प्रदर्शित करने हेतु उन्होंने चतुर्विध नायकों का वर्णन किया है । धीरोदात्त नायक का उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं–

> झेलता है सबकी नहीं बुरा कभी मानता है,
> ख्याल नहीं करता है रूप के सम्हारे का ।
> करता है फ़िदा दिल उन सब हूरों पर,
> जिंदगी बचाता लेके और से उधारे का ॥
> 'रसिक छैल' बावली करता हमेशा बात,
> ज़हर चढ़ा ही रहे इश्क मतवारे का ।
> रोता है, न हँसता, न खाता पीता सोता कभी,
> सबसे गरीब दिल आशिक बिचारे का ॥

यहाँ 'झेलता है सबकी' से गम्भीर स्वभाव, 'नहीं बुरा कभी मानता है' से क्षमाशीलता तथा न रोना, न हँसना आदि से दुःख-सुख में प्रकृतिस्थ स्वभाव का वर्णन मिलता है । ऐसे अनेक छन्द उनके काव्य में विद्यमान हैं ।

---

1. साहित्य दर्पण–आ० विश्वनाथ–तृतीय परिच्छेद श्लोक 32.

धीरोद्धत नायक—धीरोद्धत नायक वह नायक है जो मायापटु हो, उग्रस्वभाव वाला हो, स्थिर प्रकृति का न हो, अहंकार और दर्प से भरा हो और सर्वथा आत्मश्लाघा में निरत रहता हो।[1] कवि रसिक छैल ने इस नायक का वर्णन इस प्रकार किया है—

निकस मियान घड़ी एक ना विराम लेत,
चपला सी चमक्क शत्रु छाती विदार है।
बिज्जुली झमक्के नहिं सक्के अरिनाशत में,
अश्वसार हातीशर बीरन में पार है।
रसिक छैल सूजा के सुत हो जवाहर जू,
तेरी सब पैज पूरी राखी करतार है॥
कट्ट कट्ट मुण्डन के झुण्ड अवसिक्त करे,
अति ही प्रचण्ड चण्ड तेरी तलवार है॥

यहाँ भरतपुर राज घराने के परम अहंकारी वीर महाराजा जवाहरसिंह का वर्णन है। इनका शौर्य इतिहास प्रसिद्ध रहा है।

धीरललित नायक—धीरललित नायक वह नायक होता है जो कि निश्चिन्त रहने वाला, स्वभाव का मृदु और कलाव्यसनी हो।[2] कवि 'रसिक छैल' केवल रचनाकार ही नहीं थे वे संगीतज्ञ भी थे। अतः कला-व्यसनी कवि ने अपने संस्कारों की चेतना में स्थित होकर अपनी रचनाओं में स्वयं की प्रवृति को अधिक उभारा है। कवि जहाँ कहीं इन भावों में स्थित होकर काव्य रचना करता है वहाँ धीर-ललित नायक के वैशिष्ट्य से युक्त काव्यस्रोत स्वतः ही प्रस्फुटित होने लगते हैं। इस स्वतः स्वम्भवी काव्य धारा में कवि कभी भगवान कृष्ण के ललित रूप को तो कभी 'छैल' के काव्य रूप को

---

1. मायापरः प्रचण्डचपलोऽहंकार दर्पभूयिष्ठः।
आत्मश्लाघानिरतो धीरैर्धीरोद्धतः कथितः॥
सा० दर्पण—आ. विश्वनाथ—तृ. परि. श्लोक 33

2. निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्।
सा. दर्पण—आ. विश्वनाथ तृ. परि० श्लोक 34

प्रदर्शित करने लगता है। यही कारण है कि उनके काव्य में धीरललित नायक सर्वथा छाया हुआ है। इसके कुछ नमूने इस प्रकार हैं।

माई मली सी मोरी मामिनी की चितौन ऐसी,
तज्यौ निजगेह गुन गरिमा गमाई है।
छाई है छबीली छवि नैनन 'रसिक छैल'
छौड़ि राग रंग रज अंगन रमाई है॥
मार-मार तीर द्रग-कोरन अनंग कसे,
कौने हैं जर-जर ज्योति जोवन जगाई है।
हरे-हरे होटन में हंसन लुमानी हिय,
सांवरी सलोनी शुचि सूरत समाई है॥

और भी—

बँसिया बजत बहुरि बन बन में,
रसिया रहित रसिक रसियन में।
मौनी नई नवेली निरखत,
नवल नार नारन में॥
मन्द मस्ताने मोहन मृदु,
मुसकात मधुर मन मन में।
× × × ×
'छैल' छबीले छिन छिन छाजै,
छप-छुप छद्र छलन में॥

धीर प्रशान्त—धीर प्रशान्त नायक उस नायक को कहते हैं जिसमें नायक के त्याग आदि सामान्य गुण प्रचुर मात्रा में हों और जो ब्राह्मणादि उच्च वर्ण का हो।[1] रसिक छैल ने अपनी रचनाओं अनेक छन्द धीर प्रशान्त नायक की दृष्टि से लिखे हैं। एक उदाहरण दृष्टव्य है—

---

1. सामान्यगुणैर्भूयान् द्विजादिको धीरप्रशान्त स्यात्।
सा० दर्पण—आ विश्वनाथ तृ. परि श्लोक 34

रहि रूप सदां हमरो थिर थे,
यहि ज्योति बढ़ै सवरे सुख को ।
वल भौंहन बीच रहै मद को,
न तु ताकत 'छैल' घटै तन को ।
जु कही सुकरी नकरी नकही,
बस बात रहै अपने मन की ।
सुन मात यही वर माँगत हूँ,
नहिं आंट कटै तरु तापन को ॥

नायिका वर्णन

कवि प्रतिभा के धनी कवि 'रसिक छैल' नें अपने काव्य को शास्त्रीय काव्य के अनेक पहलुओं में रचा है। काव्य विविध पहलुओं में काव्य वर्णन के आधार नायक और नायिका का वर्णन अत्यन्त उत्कृष्ट रूप से किया है। नायकों के विविध रूपों का वर्णन ऊपर दर्शाया गया है। यहाँ नायिका के भेद-प्रभेदों के रूपों को प्रदर्शित करना ही हमारा उद्देश्य है। साहित्य दर्पणकार के अनुसार नायिका तीन प्रकार की हुआ करती हैं– १. स्वीया २. अन्या अथवा परकीया और ३. सामान्या ।[1]

इन तीनों प्रकार की नायिकाओं का वर्णन कवि ने अपने काव्य में दर्शाया है। इनका वर्णन उदाहरण सहित यहाँ दिया जाता है।

स्वीया नायिका—साहित्यदर्पण में स्वीया नायिका का वर्णन करते हुए आचार्य विश्वनाथ का कथन है कि वह स्त्री जिसमें नम्रता और सरलता आदि गुण रहा करते हैं, जो गृहकर्म में तत्पर रहती है और पतिव्रता हुआ करती है।[2] कवि 'रसिक छैल' ने अपनी

---

१. अथ नायिका त्रिभेदा स्वान्या साधारणा स्त्रीति ।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासंभवैर्युक्ता ॥
साहित्यदर्पण–आचार्य विश्वनाथ तृ. परि. कारिका 56

२. विनयार्जववादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया ।
वही–करिका 57

रचनाओं में स्वीया नायिका को प्राथमिकता दी है। भारतीय संस्कृति से परिपूर्ण लज्जावती नारी का लज्जा ही आभूषण है। एक उदाहरण दृष्टव्य है—

सग भाग सुहाग भरी ललना,
हुलसी हिय रागन गायो करै।
हस 'छैल' सु घूँघट के पट में,
चख चंचल चारु चलायो करै।
उमकै झिझकै झहराय झुकै,
निज प्रेमिन को मन भायो करै।
पिय के मुख कंज पै मोहित ह्वै,
भ्रमरावलि सो मडरायो करै॥

इस रचना में 'हुलसी हिय रागन गायो करै' से मन की मुदिता 'घूँघट के पट में' से लज्जाशीलता तथा 'पिय के मुख कंज पै मोहित है' से पतिव्रता का लक्षण प्रतीत होता है। स्वीया नायिका का यह बहुत ही सुन्दर उदाहरण है।

स्वीया नायिका भी तीन प्रकार की हुआ करती हैं। १ मुग्धा २. मध्या ३. प्रगल्या।[1]

मुग्धा स्वीया नायिका—मुग्धा वह नायिका है जिसके शरीर में यौवन अवतरित हो चुका हो, जिसके मन में काम का उन्मेष प्रारम्भ हो रहा हो, जिसे रतिलीला में झिझक होती हो, जिसका प्रणयकोप कोमलता लिए हो और जो अपनी लज्जाशीलता के कारण प्रेम प्रकाशन में विवश रहा करे।[2] कवि 'रसिक छैल' ने मुग्धा नायिका का वर्णन करते हुए लिखा है—

---

१. साऽपि कथिता त्रिभेदा मुग्धा मध्या प्रगल्भेति।
स्वा० द०—आ विश्वनाथ तृ. परि. का-57

२. प्रथमावतीर्णयौवन मदन विकारा रतौ वामा।
कथिता मृदुश्च माने समधिक लज्जावती मुग्धा॥
वही—का. 58

नवला घर प्रीतम आइ गई,
पलि देख भई सटका संटकी ।
तिहि रात विछों सिजियां सु अटा,
रस रीत मची झटका-झटकी ॥
सकुची लचकी डरपी झिझकी,
पुनि छूट गये पटका पटकी ।
जब घूँघट खूट मिली अखियाँ,
तव होन लगी अटका अटकी ॥

इसमें नवोढा (मुग्धा) नायिका का वहुत ही सजीव वर्णन किया है ।

मध्या स्वीया नायिका—मध्या वह नायिका है जो रंग-विरंग की रति लीलाओं में निपुण हो चुकी होती है, जिसमें कामपिपासा वढ़ती दिखायी दिया करती है, जिसका यौवन उभार पर रहा करता है, जिसे प्रणयालाप में कोई विशेष हिचक नहीं हुआ करती और जिसकी रति-लज्जा वहुत अधिक नहीं रहा करती ।[1] कवि 'रसिक छैल की काव्य प्रतिभा का एक सुन्दर नमूना दृष्टव्य है—

यौवन संसार एक तीय चली प्यारे पास,
किंकण हू वाजै ज्यों धनुष टंकार है ।
भोहैं कमान बनी नैन दीखैं खडग सम,
ठंडी लै उसास जैसे तीर सनकार हैं ।
कटि अति छीन और उरज कठोर ताके,
नीकी मुसकान ज्यों विद्युत घन कार हैं ।
'रसिक छैल' प्यारी के रूप रंग मंच मानों,
काम के जगाने को नूपुर झनकार हैं ॥

प्रगल्भा स्वीया नायिका—प्रगल्भा वह नायिका है जिसमें कामोत्तेजना बढ़ती हो, पर जिसका यौवन पूरे उभार पर पहुँच

---

१. मध्या विचित्र सुरता प्ररूढस्मर यौवना ।
ईषत्प्रगल्भ वचना मध्यवीडिता मता ॥
वही—का. 59

गया हो, जिसमें रति लीला के समस्त कौशल समा चुके हों, जिसके हाव-भाव पूर्णरुपेण विकसित हो चुके हों, जिसमें रति-लज्जा की थोड़ी ही मात्रा बच गई हो और वस्तुतः जो रतिलीला में नायक को भी पछाड़ने की शक्ति रखने लगी हो[1] यथा–

सरकी भाल बिंदी नैनन कैसे उनीदें आज,
क्षत हैं कपोल बढ़ी ललिमा अधर की ।
धरकी है छाती कुच कोर बढ़ी ओगी खुली,
कंपत है गात महदी छूटी क्यों करकी ॥
फरकी हरी चूरी फिरै अति घबरानी सी,
ढीले श्रृंगार सेज साजी किन सुघर की ।
घर की ना सुधि बुधि रही है "रसिक छैल",
रात कहाँ जागी लट छूट गईं सरकी ॥

कवि "रसिक छैल" की रचना में प्रगल्भा स्वीया नायिका के समस्त भाव निहित हैं । सुरति लक्षिता नायिका का अत्यन्त मनोहारी वर्णन इसमें दर्शाया गया है ।

परकीया नायिका–परकीया नायिका वह नायिका होती है जो नायक की पत्नी नही होती अपितु वह नायक की हृदय सामग्री होती है । उसके चितवन स्वरूप को नायक सर्वथा याद करता रहता है और अपने तन-मन की सुधि बिसार देता है । आचार्य विश्वनाथ ने इस परकीया नायिका के दो भेद माने हैं । १. परोढा (पर–परिणीता) और २. कन्यका (अपरिणीता)[2]

परोढा परकीया नायिका–परोढा वह नायिका है जो यात्रादि

---

१. स्मारान्धा गाढतारुण्या समस्तरतकोविदा ।
भावोन्नता दरव्रीडा प्रगल्भाक्रान्तनायका ॥
साहित्यदर्पण–आचार्य विश्वनाथ–तृ परि कारिका 60

२. परकीया द्विधा प्रोक्ता परोढा कन्यका तथा ।
वही–तृ परि का 66

की शौकीन तथा अन्य लोगों से प्रेम-प्रसंग रखा करती है।[3] कवि 'रसिक छैल' ने इस परोढा नायिका का वर्णन इस प्रकार किया है–

देखी नारि लालपट ओढ़ें एक गाँव माँहि,
अति ही प्रवीन निज जोबन सम्हार में।
कटि अति छीन और उरज कठोर गोल,
सुन्दर बदन चन्द्र ऊग्यौ ज्यों पहार में॥
'रसिक छैल' जादू है टोना है कि मंत्र-जंत्र,
भूल्यो राग रंग जब कीनी आँख चार में।
एक पग चली ठुकी फिर लंगड़ाई लई,
हँसि हिय लै गई हमारौ गल हार में॥

कन्यका परकीया नायिका–कन्यका परकीया नायिका वह है जो नवयुवती और लज्जाशील हुआ करती है तथा अविवाहिता होती है।[1] "रसिक छैल" रचना संग्रह में इसके अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं। बानगी के लिए एक रचना यहाँ दी जाती है–

भवन हमारे एक आई ही मयंक मुखी,
हिय उमगानों ज्यों कमल खिले भोर में।
'रसिक छैल' रति हू भुलानी लखत ताहि,
प्रीत बढ़ी हमरी ज्यों चन्द्रमा चकोर में॥
लौंनी लुभानी लट लटकत लजीली पीठ,
जोबन झकोर खात मदन मरोर में।
देऊ हरियाली भली मन मृग जाय फंस्यो,
कारे कजरारे मतवारेन की कोर में॥

---

१. यात्रादिनिरताऽन्योढा कुलटागलितत्रपा।
वही–तृ परि. का 66

२. कन्या त्वजातोपयमा सलज्जा नवयौवना।
साहित्यदर्पण–आचार्य विश्वनाथ–तृ. परि. का. 67

के काम-मोहित होने का बहुत ही हृदयहारी वर्णन इस रचना में देखने को मिलता है।

सामान्या नायिका–सामान्या वह नायिका है जो रति कला-कुशल तथा संगीतादि कलाओं में पारंगत हुआ करती है।[2] कवि 'रसिक छैल' राजघराने के प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। परम्परागत तरीके से राजघरानों में संगीतादि कलाओं से मनोरंजन करने की एक प्रथा रही है। इस मनोरंजन की व्यवस्था में श्रेष्ठ कलाकारों को आमन्त्रित करके विशिष्ट अतिथियों का मनोरंजन कराया जाता रहा है। कवि हृदय की भावुकता ने इन मनोरंजन के मंचों को अत्यन्त निकटता से देखा और सुना है। उन मंचों में कार्य रत कलाकारों के हाव-भावादि सौन्दर्यों का निरूपण करना उनकी काव्यकला की विशेषता रही है। सामान्या नायिका का ऐसा ही एक सुन्दर वर्णन यहाँ दृष्टव्य है–

हँसत नवेली करि भौंह बंक धनु जैसी,
बिंदी ललाट सोहत भानु जिमि भोर में।
सुन्दर नितम्ब अरु कटि अति छीन बनी,
कुचन विकास आंगी दरकी है जोर में॥
'रसिक छैल' गैल गैल ह्वै है बढ़ाई ताकी,
डोलै इतराती नित जोवन मरोर में।
घूंघट की ओर चोट करत सरोज मुखी,
लाखों तेज तीर छुपे नैनन की कोर में॥

'गैल-गैल ह्वै है बढ़ाई ताकी' से उस सामान्या नायिका के अत्यन्त मोहक सौन्दर्य का आभास होता है। "डोलै इतराती नित जोवन मरोर में" से उसके स्वच्छन्द विचरण की भावना प्रकट होती है। रूप गर्विता नायिका का यह मनोहारी वर्णन उत्कृष्ट कोटि का है।

सुन्दरी नवयौवना कन्या का उत्कृष्ट रूप और उस पर नायक

२. धीरा कला प्रगल्भा स्याद्वेश्या सामान्यनायिका।
वही–तृ परि. का 67

बांसुरी—बांसुरी भगवान श्रीकृष्ण का परम प्रिय वाद्य यन्त्र है। बांसुरी की मधुर ध्वनि बृज के गोप-गोपियों को ही नहीं वहाँ के पशुओं, खग-वृन्दों और वन-उपवन को भी अपनी ओर मोहित कर लेती है। गोपियों के लिए तो उसकी ध्वनि पागल कर देने वाली है।

आई पून्यों शरद सुहानी,
फिर गोपिन की याद करी।
तीनों लोक की मोहन हारी,
बंशी याने अधर धरी॥
लीनी स्वर सों खेंच सखी,
सब उस बृज के अवतारी ने।
जो जैसी बैठी थी वैसी,
की वैसी उठ धाई है।
भाई, बन्धु, पति, देवर,
अब सभी छोड़ कर आई है॥
रोके ते नांय रुकी पिता के,
वहु बरजी महतारी नें।
बड़ी-बड़ी लीलाएं कीनीं,
बांके छेल विहारी नें॥

गोपियों न श्रीकृष्ण की बांसुरी को बांस की बनी हुई वस्तु न मानकर उसे अपनी सौत के रूप में देखा है। वह बांसुरी निगोड़ी कृष्ण के अधरों का सर्वथा पान करती रहती है। उसने गोपियों के जीवन को नष्ट करने का शायद पक्का इरादा कर लिया है।

सुनत ही तान कान बावरी भई हैं सब,
भूलीं खान-पान कोऊ आंगन परी रहै।
तात मात त्यागे कुल कान हू बिसार दई,
घूंटै घट पट प्रीत हिय में भरी रहै॥
कैसी निर्मोहिन नें ब्रजवनिता मोहि लईं,
जीवन को नाश करै चुप्प ना धरी रहै।

'रसिक छंत' बाँसकी में बाकी कुछ छोड़यो ना
बाँसुरी निगोड़ी तोऊ अधर धरी रहे ॥

सामयिक यथार्थ का चित्रण—कवि की काव्य दृष्टि आदर्श की ओर अनुप्रेरित होते हुए भी वह यथार्थ के धरातल पर ही विद्यमान होती है। श्रोता या पाठक अपने परिसर मे ज्यादा प्रभावित रहता है। वह उसे अधिक जानता है जिसका अनुभव हो रहा है। आदर्श व्यवहार के लिए साध्य है। वह न साधन है और न साधक। इसी कारण कवि उस आदर्श साध्य के लिए व्यवहार साधन को लालित्य रुप देकर सामाजिक के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। सामयिक यथार्थ का जाग्रत रुप द्रष्टव्य है—

आज का मानव पैसे का भक्त है,
प्रेम का अभाव है दया से रिक्त है।

अज्ञान के अंधेरे में लोभ के सवेरे में,
करता रहता है सदा आराम।

प्रम के नाम पर ठेकेदारी है,
मित्रता में विश्वासघात की आरी है।

दिखावे का दौर है, पीछे कुछ और है,
अन्जान है नहीं जानता अन्जाम।

'मानवता की पुकार' कविता में कवि ने पूंजीवादी विचार-धारा का जो सामयिक यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है वह हृदय को झकझोर डालता है।

तुमको है आती सुखद नींद,
पर पीडन को अपनाया है।

भूखे जीवन को खेल समझ,
उनका अस्तित्व मिटाया है॥

है स्नेह रहित यह दीप लाठ,
तिल तिल करके जल जाने दो।

लो भूल ! चुके तुम मानवता,
उस जगत ईश को भूल गये।

बढ़ गया स्वार्थ सब गया ज्ञान,
खा-खा कर परधन फूल गये ॥

ब्रज होली का वर्णन

ब्रज में होली का बहुत महत्त्व माना गया है। माघ शुक्ला पंचमी को जब होली का प्रारम्भिक पूजन होता है तभी से हुरियारों के मन में होली की हिलोरें प्रारम्भ हो जाती हैं। भगवान श्रीकृष्ण की इस क्रीड़ा भूमि में होली खेलने की अनेक आकर्षित परिपाटियाँ विद्यमान हैं। इस ब्रजभूमि का प्रत्येक रसिया मन श्रीकृष्ण और रसिक प्रिया राधा रानी बन जाती है। जहाँ देखिए वहीं कृष्ण राधा के नाम पर होली के गीतों की ध्वनियाँ रंगों के रूपों में उड़ती हुई दिखाई देती हैं। नई-नवेली वधुएँ तो विशेष रूप से होली का शिकार बनती हैं। डर के मारे वे घरों से निकलना भी पसन्द नहीं करतीं।

आई ही नवेली गौने रंग को न जानें सार,
किये हैं सिंगार नार शंका उर धारी है।
देखे नन्दलाल हाल चढ़त सीढीन लिए,
करन गुलाल और केसर की थारी है ॥
हिय हहरानी अकुलानी देख कृष्ण जू कों,
होगी झक झोरी खुल जैहें तन सारी है ॥
'रसिक छैल' संग की सहेली हू हारीं सारी,
होरी के डरसों सो चढ़त ना अटारी है ॥

होली के वस्त्रों में सजी-संवरी गोपियों का सौन्दर्य एक दम अनोखा ही दीखता है। अपने हाथों में रग की पिचकारी लेकर और मृदंग ढप आदि वाजों को वजाती हुई अपने नूपुरों की झनकारों से सभी के मन को मोहित करती हुई ये सुन्दर नव-युवतियाँ सहज ही मन को मोहित कर लेती हैं।

रंग-विरंगे दुकूलन कों ओढ़ चालीं आलीं,
घटा सम दरसें सुअंवर गुपाल के।
चलैं पिचकारी मेह बरसें ज्यों धारन सों,
दामिनी दमकें वेंदी नीकी बीच भाल के ॥

बाजे मृदंग ढप गरज घन बीच भई,
झींगुर से झिगारे हैं नूपुर विशाल के।
'रसिक छैल' होरी बीच वशी ऋतु आई है,
उड़ रहे बादल बहुरंगी गुलाल के॥

अपने साजन के साथ होली खेलने का भी एक अद्‌भुत आनन्द मिलता है। परम उल्लास के साथ होली खेलने की उत्सुकता कहती है—

साजन संग खेलूँ रंग होरी रे।

फागुन मास लगते ही यदि प्रिया अपने मायके चली जाये तो रसिया प्रेमी का अत्यन्त दु:खी हो जाता है। उसे होली का सच्चा आनन्द ही प्राप्त नहीं होता।

लागत ही फागुन निज प्यारी सिधारी मैके,
काके लगायन हेत रंग घुरवायेंगे।
हुओ रस फीको कछु नीको ना लगत मोहि,
करकें सब केलि मो मनको जरायेंगे॥
'रसिक छैल' कैसे कटिहिंगे ये तीस दिन,
एक-एक पल एक बरस सम जायेंगे।
रहे हैं अकेले कछु मन मे उमंग नहिं,
तब भी या साल हम होरी को मनायेंगे।

प्रिया के वियोग में दु:खी मन जब होली की धूम मचाते गाते-नाचते मदमस्त हुरियारों को देखता है तो उसके मन में भी होली खेलने का भाव जाग्रत होता है। वह अपने मन को समझाते हुए कहने लगता है—

लागी आग वन में न मन को सुहात कछू,
छाँड़ि गई प्यारी कौन जानें विपत मेरो।
डोलें हुलसाते सब नारिन कों संग लिए,
प्रेम में भरी हैं परों गल में भुजा गोरी॥
'रसिक छैल' बाजें मृदग ढप झांझ खूब,
मगन भये नाचत हैं नित्य छोरा-छोरी।

आग लगौ फागुन में जबहूं मिलैंगी प्रिये,
तब ही हम खेलेंगे गुलाल रंग होरी ॥

प्रकृति वर्णन

कवि सृष्टि का सर्वोच्च चेतनशील व्यक्ति होता है। कहा भी 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि'। प्रकृति के हाव-भावों का के मानस पर गहरा प्रभाव पड़ता है। वह परिवर्तित प्रकृति की तु व्यवस्था से भी प्रभावित होता है। अतः अपने प्रकृति वर्णन में तु-वर्णन को समाविष्ट करता रहता है। कवि 'रसिक छैल' ने भी भी ऋतुओं का वर्णन रचना के माध्यम से किया है।

वसन्त ऋतु—

पीरे आभूषण औ वसन्ती हों वसन्त नीके,
पीरौ ही मृदंग लै वसन्त राग गावै री।
पीरौ सुरंगी रंग कनक पिचकारी डार,
पीरौ गुलाल उड़ आकाश बीच छावै री ॥
'रसिक छैल' पीरी सेज चढकैं पिया प्यारौ,
पीरी परी मोय आय हृदय लगावै री।
काम कूं जगावैं लगी तन की बुझावैं सखी,
ऐते हों साज तब वसंत मन भावै री ॥

ग्रीष्म ऋतु—

ग्रीष्म ऋतु के प्रबल झोके,
तन जलाते वह्नि होके।
गगन धूमिल धूरि से है,
धूरि नभ में जल रही है।
सूर्य का सहयोग पाकर,
ताप प्रति पल बढ़ रही है।
ःप्ट वादल हैं न आते,
जो प्रबल उत्ताप रोके।

जल गये हैं जल जलज सब,
और जल चर मर चुके हैं।
पंख सूखी हैं दरारें,
भूमि कण तक फट चुके हैं।
हैं विकल जितने चराचर,
वृक्ष सूखे हैं वनों के।
× × × ×

वर्षा ऋतु—

चमकी चपला चहुँ चंचल है,
अबलानन चित्त चुरावनी है।
घुमडाय घिरीं घन की घि घटा,
घहराय अटा हु डुरावनी है॥
बरसैं बुंदियाँ वन-बागन में,
पिक दादुर बोल सुनावनी है।
सखि सोच कहाँ ऋतु पावस में,
यह सावन मास सुहावनी है॥

शरद ऋतु—

शरद आई! शरद आई!
कर गई वर्षा किनारा,
गगन निर्मल हो चला है।
ओस कण झरने लगे हैं,
संग में निज शीत लाई।
अब न दादुर बोलते हैं,
गर्व था जिनमें समाया।
अपनी-अपनी बोलते थे,
राग था अपना जमाया।
यह क्षणिक उत्तेजना थी,
और थी झूंठी ढिठाई।

अव चलेंगी शीत वायु,
और दिन कर कम तपेंगे।

पंक वंचित भूमि होगी,
चैन के रस्ते कटेंगे।

जग करेगा मौज होगी,
दादुरों की अव हँसाई।

हेमन्त ऋतु—

सीतल समीर के सुरीले सुर वैन सों,
सासति सी समाई जग साधु औ सन्त में।

औसर आराम के अज० अनमोल की साधे,
आग हू वुझानी आज थक-थक अन्त में।

मंजन मसाले अरु सुरता के प्याले पिये,
दरत चना से दुरि दोहर हू दन्त में।

हिम है हिमालय में 'छैल' हिम आलय में,
हिम को न अन्त पर समस्या हेमन्त में।

ग्रीष्म के मौसम में आँधी–तूफानों का विकट जोर रहता है। कभी-कभी तो इनके प्रकोप से घरों के छप्पर तक उड़ जाते हैं। ऐसा ही एक वर्णन इस रचना में देखा जा सकता है—

आँधी उठी जोर कर भारी,
चहुँ दिशि छाय गई अँधियारी।

उड़ गये छप्पर खम्भ अटारी,
चढ़ गई उन झाँकन ते जूरी।

वरसन लागी जी महाराज,
व्रज पर भूमर भूरी–भूरी॥

विकट गर्मी के पश्चात् आकाश में वादलों को मँडराते देखकर सभी जीवों की यह आश वँधती है कि अव गर्मी की तड़पन से छुटकारा मिल ही जायेगा। ऐसे समय में विना वरसे वादलों का चला जाना कितना कष्टदायक होता है इसका वर्णन द्रष्टव्य है—

झीनी घटा घुमड़ घिर आई,
कुछ-कुछ दामिनि देत दिखाई।
बिन बरसाये वारि विहाई,
रह गई सबकी आश अधूरो॥

दार्शनिक विचारधारा—कवि सहृदय होता है। वह परमेश्वर की रचना में सहृदयता का स्वरूप निहारता है और उसे सहृदयी बनाकर कोमलकान्त भावनाओं के योग्य बनाकर प्रस्तुत करता है। अपनी सरस विचार धारा के साथ उसमें जीवन को समझने की भी अद्भुत् शक्ति निवास करती है। इसी शक्ति के उजागर होने पर उसे संसार का वास्तविक रूप भी दिखाई देने लगता है। जीवन को देखना ही दर्शन है। दार्शनिक विचारधाराओं मे संसार का माया-मोह रूप मुक्त होने लगता है। समय चक्र मे चकित कवि को सरस एवं सुखद शान्ति दायक ससार भी विचित्र सा लगने लगता है—

उठा बवंडर समय चक्र का,
हृदय बीच तूफान बढ़ा।
दूषित वायु कलह धूरि ले,
धीरे-धीरे गगन चढ़ा॥
फिर मेरी वह सुखद शान्ति,
सब नष्ट हुई फँसते-फँसते।

इतना ही सुरभित-सुगन्धित पृथ्वी कटकों से परिपूर्ण दिखाई देने लगती है।

अवनी कंटक पूर्ण महा,
पग-पग पर विषधर सर्प पड़े।
घिर रही राह तस्कर दल से,
अनगिनत दस्यु चहुँ ओर खड़े॥

संकटापूर्ण इन परिस्थितियों में परमानन्द दायक ऋतु वसन्त की शोभा भी हृदय को चुभने वाली लगती है।

उजड़ रही है प्रेम की बस्ती।
भूल गये हैं मन की मस्ती ।।

शोक भरा है आज जहाँ।
आज वसन्त कहाँ ।।

जीवन मूल्य—

काव्य रचना का उद्देश्य सर्वजनसुखाय एवं सर्वजनहिताय होता है। कवि के रचना संसार में मानव जीवन का स्वरूप वर्णित किया है। हमारे जीवन के कतिपय शाश्वत मूल्य हैं जिनके लिए ही हमारा जीवन सार्थक माना गया है। कवि 'रसिक छैल' ने ऐसी ही जीवन के शाश्वत मूल्यों को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। इनमें कुछ इस प्रकार हैं—

१. देश भक्ति—'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि' आदि कवि वाल्मीकि के इस कथन के आधार पर जन्मभूमि को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ माना गया है। कवि 'रसिक छैल' बृजभूमि में पैदा हुए अतः उन्होंने ब्रजभूमि के महत्त्व को वर्णित करते हुए लिखा है—

यह भूमि वही जहाँ कृष्ण भये,
कर कौतुक ते मन मोद दये।

सुख संपति सौं सब देश छये,
सब गावत प्रीत सुगीत नये ।।

तिन दुष्ट पुकार पछार दिये,
विपतान सुचक्र उबार दिये।

बिगड़े सग काज सुधार दिये,
अरु दान हजार हजार दिये ।।

इसके अतिरिक्त देशभक्ति को सर्वोच्च मानते हुए कवि ने 'सेनानी' जैसी परम उत्साही कविताएँ लिखीं।

बढ़ता था जब उत्साह लिए,
इन तोपों के अंगारों में।

घुस जाता था निर्भीक हृदय,
विद्युत् सा वह असि धारों में ।।

अधरों पै था बस एक शब्द,
स्वातंत्रिक ज्योति जगानी है।

देशभक्त अपनी स्वतन्त्रता के लिए अपना सर्वस्व न्योंछावर कर देता है। उसकी आन-बान-शान सब देश के लिए ही समर्पित होती है। ऐसी वीरोचित एक रचना प्रस्तुत है—

गिरि ना गिरेंगे नर गिरेंगे गति धारिन सौं,
गुन गर्वीलिन के झंडे गढ़ जायेंगे।
करि करि कै कोप कूद लैकै कुल्हाड़ी कर,
मारे कठोर कानन काट कढि जायेंगे॥
बानन से बाँकुरे बहादुर जे बोल 'छैल',
बंध ऐसे बली वीर बांके बढ़ जायेंगे।
सेना के सतर्क हुए साहसी सिपाही सब,
सारे सैल संगन समोद चढ़ि जायेंगे॥

इस प्रकार की अनेक रचनायें कवि के देश भक्त हृदय से स्वतः ही प्रवाहित हो उठी हैं।

२. मंगल कामना—कवि का हृदय सर्वजनहिताय एवं सर्वजन सुखाय के भाव से पूरित होता है। उसके हृदय में सर्व मंगल का भाव सर्वथा प्रवाहित होता रहता है। कवि 'रसिक छैल' की रचनायें भी इस भाव से परिपूर्ण हैं। यथा—

नित नूतन प्रेम परस्पर हो,
जनते जन नेकन जीय जरें।
तन भारत भूमि सुकाज लगें,
निज गौरव के हित जीय धरें॥
बरसें घन औ उपजें धन धान,
सदा नहीं प्रभु को पल ध्यान टरें।
हरषें छवि 'छैल' छटा छिटकें,
सुख सम्पत्ति सों सब देश भरें॥

और भी—

हट जाँय घटा दुःख की जग सौं,
अँसुआ नहिं नैनन नैंक ढरैं।
निज कर्म करैं सगरी जनता,
शुभ कर्म सौं जीव न नैंक टरैं॥
हंसते हिय औ हुलसात रहै,
नहिं रोग जरा जग जान परैं।
बस 'छैल' मिलें मन शान्ति तभी,
सुख सम्पत्ति सौं सब देश भरैं॥'

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु या कश्चिद् दुःखभाग भवेत्॥ का अनुपम भाषानुवाद इन छन्दों में वर्णित है।

३. कला एवं साहित्य के प्रति अभिरुचि—मानव बुद्धि कौशल की दृष्टि से सर्वोच्च प्राणी माना जाता है। कला एवं साहित्य बुद्धि के विलास हैं। इसी कारण जीवन के शाश्वत मूल्यों में कला एवं साहित्य का एक विशिष्ट स्थान माना जाता है। कवि रसिक 'छैल' भी इसे जीवन के लिए एक आवश्यक वस्तु मानते हैं। उनका कथन है-

जिस जीवन में साहित्य नहीं,
उस जीवन ने क्या चक्खा है।
जिस जीवन में कुछ राग नहीं,
उस जीवन में क्या रक्खा है॥
फिर ऐसे नीरस जीवन पर मैं,
क्यों मन में अभिमान करूँ।'

कवि नीरस जीवन को सार्थक जीवन ही नहीं मानता। सरसता बिना साहित्य और कला के जीवन में आ ही नहीं सकती। अतः इनका हमारे जीवन में बहुत अधिक महत्व है।

४. अन्याय के प्रति संघर्ष—अन्याय एवं अत्याचार को सहन करना कायरता का द्योतक होता है। साहसी व आत्म सम्मान वाला

पुरुष कभी भी अन्याय को सहन नहीं कर सकता। राजघराने में उत्पन्न कवि 'रसिक छैल' ने अन्याय के प्रति आवाज उठाई। उनकी काव्य रचनाओं में अन्याय के प्रति क्रान्तिकारी भाव साकार हो उठे हैं। यथा 'सुन्दर सपनों का समय गया' कविता में—

इस आलस को अब दूर पटक,
मन नई उमंगों से भर लें।
इस शान्ति प्रेम की वीणा को,
तू तोड़ क्रान्ति जग में भर दे।
हट जांय आतताई पल में,
अरु धधक उठे भीषण ज्वाला॥

और भी—

जब क्रान्ति भरी हो रग-रग में
उत्थान भरा हो सब जग में।
तब हृद् बल उनको देने को,
भय में स्वच्छन्द हँसा करता है।
कवि कब गीत लिखा करता है।

५. शालीनता—शालीनता मनुष्य जीवन के लिए श्रेष्ठ गुण माना गया है। 'शीलं परम् भूषणम्' के आधार पर शील को मानव-गुणों का आभूषण कहा जाता है। कवि 'रसिक छैल' ने शालीनता के विषय में लिखा है—

दुःख कितने भी पड़ें नहिं हारता हूँ,
क्रोध और अभिमान को मैं मारता हूँ॥
हूँ अहिंसक फिर भी अपने साथ में,
शील के धनुबाण तन पर धारता हूँ।

शील के सच्चे साधक का स्वरूप इन पंक्तियों में साकार हो उठा है।

मातृभाषा से प्रेम—कवि 'रसिक छैल' को अपनी मातृ भाषा से बहुत प्रेम रहा है। उन्होंने अपनी काव्यधारा को प्रवाहित करने

के लिए भी व्रजभाषा को ही माध्यम बनाया। बृज एवं बृजभाषा का इससे अधिक और क्या प्रेमभरा प्रमाण मिल सकता है कि कवि ने बृज की समस्त सांस्कृतिक क्रिया-कलापों का बहुत सरस वर्णन अपनी रचनाओं में किया है। उनकी दृष्टि में वे लोग कविता सुनने के भी अधिकारी नहीं हैं जिन्हें अपनी मातृभाषा से प्रेम नहीं हो। काव्य की सरसता जितनी व्रज भाषा से मिल सकती है उतनी खड़ी बोली से भी नहीं।

पुलक जाय समिति में बैठे गुमान भरे,
कोरे घमण्ड ते जगत में काम ना सरैं।
निज मन जानैं है हम सरन और कोऊ,
डींग बड़ी हाँकैं नहीं काऊ देव सौं डरैं॥
रह कैं व्रज माँहि व्रजभाषा को त्यागत हैं,
जानैं नहीं रस खड़ी भाषा को दम भरैं।
'रसिक छैल' डूब्यौ है कवि को समाज यहाँ,
ऐसे निर्बुद्धिन में कविता पैं कहा करैं॥

कवि का शिल्प—

"कवेर्कृति काव्यम्।" कवि की कृति काव्य कहलाती है। काव्य रचना के लिए हेतु निर्धारित करते हुए आचार्य मम्मट का कथन है—

शक्ति निपुणता लोकशास्त्र का व्याद्य वेक्षणात्।
काव्यज्ञ शिक्षाऽभ्यास इति हेतु स्तदुद्भवे॥[1]

अर्थात् काव्य के उद्भव के लिए शक्ति, लोकशास्त्रादि के निरन्तर चिन्तन-मनन से प्राप्त निपुणता और काव्यशास्त्र के मर्मज्ञों के पास बैठकर काव्य रचना का अभ्यास ये तीनों मिलकर काव्य का हेतु होते हैं। यद्यपि ये तीनों कवि के लिए परमावश्यक हैं तथापि इनमें शक्ति का महत्त्व बहुत अधिक मान्य है। काव्य शक्ति वह ईश्वर प्रदत्त शक्ति है जो कवि की प्रतिभा के रूप में प्रस्तुत होती है।

---

१. काव्य प्रकाश—आचार्य मम्मट

इस शक्ति के बिना काव्य रचना संभव ही नहीं। यदि की भी जाये तो वह हास्यास्पद होती है। इस शक्ति के प्राप्त होने पर कवि समस्त संसार को हाथ पर रखे हुए बेर के समान देखता है। सूर, मीरा, कबीर आदि अनपढ़ कवियों को यह शक्ति प्राप्त थी जो उनकी कविताओं में स्पष्ट झलकती है।

काव्य-रचना कवि की प्रतिभा का विलास है। वह श्रोता वर्ग को मंत्रमुग्ध करके आत्मविस्मृत सा करता हुआ अपनी रसानुभूति से परमानन्द की प्राप्ति कराता है। समालोचना की दृष्टि से काव्य-रचना के दो पक्ष माने गये हैं। १. कला पक्ष और २ भाव पक्ष।

कला पक्ष—कला पक्ष कविता का वह पक्ष है जिसमें काव्य के उत्पादक हेतु शब्द और अर्थ विविध आयामों से सुसज्जित होकर भावनाओं को जाग्रत करते हैं इसमें गुण, रीति, मार्ग भाषाशैली पद-लालित्य, शब्द-शक्ति, अलंकार सौन्दर्य और छन्द विधान आते हैं। भाव पक्ष में श्रोता की भावनाओं को रसानुभूति कराकर उसे परमानन्द की प्राप्ति कराने का प्रबल सृजनात्मक स्वरूप प्रकट किया जाता है। काव्य के विविध रसों का वर्णन करना ही इस पक्ष की विशेषता है।

अद्‌भुत प्रतिभा धनी कवि "रसिक छैल" ने अपनी काव्य-रचनाओं को काव्य के दोनों पक्षों से सम्यक् रूपेण सजा-सवारा है। इन पक्षों के आधार पर उनकी कृतियों का यहाँ विशद् अध्ययन करना ही हमारा प्रमुख उद्देश्य है।

गुण—काव्यशोभा के करने वाले उत्पादक-धर्म गुण कहलाते हैं। "काव्यशोभाया कर्त्तारो धर्मा गुणा।"[1] उत्पादक हेतु शब्द और अर्थ है अतः शब्द और अर्थ के जो धर्म काव्य की शोभा को उत्पन्न करते हैं वे गुण कहलाते हैं। आचार्य आनन्दवर्धन काव्य के आत्मभूत रसादिरूपध्वनि के आश्रित रहने वाले धर्म को गुण मानते है। इन दोनों प्रकार के मतों का समन्वय करते हुए आचार्य मम्मट का कथन है—

---

१. काव्यालंकार सूत्र—आचार्य वामन—३ १.१.

ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः ।
उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ॥[1]

अर्थात्-जिस प्रकार शौर्यादि आत्मा के धर्म हैं उसी प्रकार गुण काव्य के आत्मभूत प्रधान रस के अपरिहार्य और उत्कर्षाधायक धर्म कहलाते हैं।

ये गुण माधुर्य, ओज तथा प्रसाद नाम से तीन प्रकार के होते हैं। कवि 'रसिक छैल' की कविताओं में इन तीनों प्रकार के गुणों से युक्त काव्य-रचनायें द्रष्टव्य हैं—

माधुर्य गुण—

आचार्य मम्मट ने माधुर्य गुण की परिभाषा देते हुए कहा है-

आह्लादकत्वं माधुर्यं शृंगारे द्रुतिकारणम् ।
करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम् ।[2]

अर्थात्—चित्त के द्रवीभाव का कारण और शृंङ्गार में रहने वाला जो आह्लाद स्वरूपत्व है वह माधुर्य नामक गुण कहलाता है। यह माधुर्य गुण सामान्यतः सम्भोगशृङ्गार में रहता है परन्तु करुण, विप्रलम्भशृङ्गार तथा शान्त रस में वह उत्तरोत्तर अधिक चमत्कार चमक होता है। माधुर्यगुण के व्यंजकों को स्पष्ट करते हुए आचार्य मम्मट का कथन है-

मूर्ध्नि वर्गान्त्यगाः स्पर्शा अटवर्गा रणौ लघू ।
अवृत्तिर्मध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा ॥[3]

अर्थात्-अपने शिर पर स्थित अपने-अपने वर्ग के अन्तिम वर्ण से युक्त, स्वर्ग को छोड़कर शेष स्पर्शवर्ण (क से लेकर म पर्यन्त) ह्रस्व रकार तथा णकार और समासरहित अथवा स्वल्प समासवाली रचना माधुर्य में व्यंजक होती है।

कवि 'रसिक छैल' की कविताओं में शृंगार के सभी पक्षों का

---

१. काव्य प्रकाश—आचार्य मम्मट—८।८६।६६
२. काव्य प्रकाश—आचार्य मम्मट—८।८६-९०।६८—६६
३. काव्य प्रकाश—आचार्य मम्मट—६।६८।७४

बहुत कमनीय वर्णन हुआ है अत. उनकी कविताएं माधुर्य गुण से ओत-प्रोत हैं। यहां पर कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

सरकी भाल बिन्दी नैन कैसे उनीदे आज,
क्षत हैं कपोल बढ़ी लालिमा अधर की।
धरकी है छाती कुच कोर कढ़ी आंगी खुली,
कंपत है गात मेंहदी छूटी क्यों करकी॥
करकी हरी चूरी फिरै अति घबरानी सी,
ढीले भृंगार सेज साजी किन सुघर की।
घर की ना सुधि-बुधि रही है 'रसिक छैल',
रात कहां जागी लट छूट गई सरकी॥

इस छन्द में 'बिन्दी', 'आंगी', 'कम्पत' तथा श्रृंगार' आदि शब्द में द, ग, प, तथा ग वर्ण अपने अन्तिम वर्णों से युक्त हैं। रचना में ट वर्ग का अभाव है। जहां भी 'ट' आया है वह उद्धत न होकर कोमल भाव में वर्णित हुआ है। सम्भोग श्रृंगार का वर्णन करने वाला यह छन्द माधुर्य गुण से परिपूर्ण है। इसी प्रकार का एक और उदाहरण द्रष्टव्य है—

सखिन सन राधा सुनाये गरबीले बैन,
काहे नहीं कारो बांध लाओ प्रेम डोर में।
साज चतुरंगी सैन अब ही सिधाओ आली,
कीजिए गरूर चूर जोवन झकोर में॥
'रसिक छैल' गोला कुच धौंसा नितम्ब जानि,
कीनो मतिकार लाल आई जान जोर में।
नैनन के बान और भ्रकुटी कमान तान,
कीनो कान्ह घायल एक तोखी मरोर में॥

विपलम्भ श्रृंगार में माधुर्यगुण का एक उदाहरण देखने योग्य बनता है—

कज्जन कलित दृगन ही में आंसू फिरै,
पहरे मनों सफरी कालिन्दी धार कारी है।

कौन सों मरम कहै परम लजीली बाल,
मौन तपसी सी खड़ी भौन में निहारी है ।।
जा दिन ते बात सुनी प्रेमी के गमन वारी,
ता दिन ते सुधि खान-पान की बिसारी है ।
भूषण सिंगार राग रंग सब त्यागे 'छैल'
संग की सहेलिन की सुधि ना सम्हारी है ।।

ओज गुण—

दीप्त्यात्मविस्तृते र्हेतुरोजो वीर रस स्थिति ।
बीभत्सरौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च ।।[1]

वीर रस में रहने वाली आत्मा अर्थात् चित्त के विस्तार की हेतुभूत दीप्ति ओज कहलाती है। चित्त के विस्तार रूप इस दीपत्व का जनक ओज गुण कहलाता है। वीभत्स और रौद्ररसों में क्रमश: इसका आधिक्य रहता है। ओज के व्यंजक वर्णो का प्रतिपादन करते हुए आचार्य मम्मट का कथन है—

योग आद्य तृतीयाभ्यामन्त्ययोः रेण तुल्ययोः ।
हादि शषौ वृत्तिदैर्ध्यं गुम्फ उद्धत ओजसि ।।[2]

अर्थात्—प्रथम (क-च-त-प) और तृतीय (ग-ज-द-ब) वर्णों के साथ उनके बाद (ख-छ-थ-फ) और (घ-झ-ध-भ) वर्णों का अव्यवधान से प्रयोग तथा रेफ का ऊपर या नीचे प्रयोग, तुल्यवर्णों का योग, ट वर्ग का प्रयोग, श, ष का प्रयोग, दीर्घ समास एवं उद्धत रचना ओज गुण के व्यंज्जक होते हैं।

कवि 'रसिक छैल' ने अपनी वीर रस की कविताओं में ओज गुण का प्रयोग किया है। यथा—

गिरि ना गिनेंगे नर गिरैंगी गति घाटिन सौं,
गुम गर्वीलिन के झण्डे गढ़ जायेंगे ।
कटि-कटि कें कोप कूद लें के कुल्हाड़ी कर,

१. काव्य प्रकाश—आचार्य मम्मट—८।९१-९२। ६९-७०
२. —वही वही ८।९९।७५

मारें कठोर कानन काट फठि जायेंगे ॥
बानन से बांकुर बहादुर जे बोल 'छैल',
बब्बर से बली वीर बांके बढ़ जायेंगे ।
सेना के सतर्क हुए साहसी सिपाही सब,
सारे सैल संगन समोद चढ़ि जायेंगे ॥

इस रचना में अधिकांश तृतीय वर्ण और चतुर्थ वर्ण आये हैं । 'गिरि' 'घाटिन' 'कुल्हाड़ी' 'बब्बर', 'बढ़' आदि । सवर्ण का प्रयोग भी कई बार हुआ है । 'कटि'-'कटि' 'बढ़', 'चढ़ि' आदि दीप्ति प्रेरक शब्द हैं । वीर रस की यह रचना ओज गुण से परिपूर्ण है ।

प्रसाद गुण—

प्रसाद गुण के लक्षण को प्रकट करते हुए आचार्य मम्मट का कथन है–

शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छ जल वत्सनसैव यः ।
व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितः ॥[1]

अर्थात्–सूखे इन्धन में अग्नि के समान अथवा स्वच्छ धुले हुए वस्त्र में जल के समान जो चित्त मे सहसा व्याप्त हो जाता है, वह सर्वत्र सब रसों मे रहने वाला प्रसाद गुण कहलाता है । प्रसाद गुण के व्यंजक वर्णो का निरूपण करते हुए आचार्य मम्मट कहते हैं–

श्रुतिमात्रेण शब्दास्तु येनार्थ प्रत्ययो भवेत् ।
साधारणतः समग्राणां स प्रासादो गुणो मतः ॥[2]

अर्थात्–जिस शब्द, समास या रचना के द्वारा श्रवणमात्र से शब्द से अर्थ की प्रतीति हो जाय, वह सब वर्णों में रहने वाला प्रसाद गुण माना जाता है ।

कवि 'रसिक छैल' की कविताऐं श्रवण मात्र से ही आनन्द देने वाली हैं जो श्रोता को सहज ही व रसानुभूति कराती हैं । इसमें प्रसाद गुण का बाहुल्य है । यथा–

---

१. काव्य प्रकाश– आचार्य मम्मट– ८।८३।७०-७१
२. वही– वही ८।१००।७६

भवन हमारे एक आई ही मयंक मुखी,
हिय उमगानों ज्यों कमल खिले भोर में ।
'रसिक छैल' रति हू भुलानी लखत ताहि,
प्रीत बढ़ी हमरी ज्यों चन्द्रमा चकोर में ।।
लोंनी लुभानी लट लटकट लजीली पीठ,
जोवन झकोरे खात मदन मरोर में ।
देख हरियाली भली मन मृग जाय फंस्यो,
कारे-कजरारे मतवारेन की कोर में ।।

इस छन्द में संयोग श्रृंगार का वर्णन है। श्रवण मात्र से ही अर्थ प्रतीति के साथ-साथ आनन्दानुभूति होने लगती है। न तो यहां सामासिक पद हैं और न उद्धत वर्ण। एक अन्य उदाहरण—

सुनत ही तान कान बावरी भई हैं सब,
भूली खान-पान कोऊ आँगन परी रहे ।
तात-मात त्यागे कुल कान हू बिसार दई,
छूटे घट-पट प्रीत हिय में भरी रहें ।।
कैसी निर्मोहिन ने ब्रज वनिता मोहि लई,
जीवन को नाश करें चुप्प ना धरी रहे ।
'रसिक छैल' बाँस की ने बाकी कछु छोड्यो ना,
बाँसुरी निगोड़ी तोऊ अधर धरी रहे ।।

रीति—

शरीर में मुखादि अवयवों की तरह काव्य की पदसंघटना को रीति कहा जाता है। मुखादि अवयवों की सुन्दर व सुगठित बनावट ही सुन्दर व आकर्षित व्यक्तित्व की पहिचान होती है। इसी प्रकार पद संघटना के सौन्दर्य से ही काव्य उत्तम काव्य कहलाता है। यह रीति काव्य में रसादि की पोषक होती है। रीति का वर्णन करते हुए साहित्य दर्पणकार का कथन है।

पदसंघटनारीति रंगसंस्था विशेषवत् ।
उपकर्त्री रसादीनां सा पुनःस्याच्चतुर्विधा ।।

वैदर्भी चार्थ गौड़ी च पांचाली लाटिका तथा ॥[1]

यह रीति चार प्रकार की होती है। १. वैदर्भी २. गौड़ी ३. पांचाली और ४. लाटिका। लाटी गीति वैदर्भी तथा पांचाली के अन्दर ही स्थित है अतः रीति तीन प्रकार की ही मानी जाती है।

वैदर्भी–

माधुर्यव्यंज्जकैर्वर्णे रचना ललितात्मिका।
अल्प वृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते ॥[2]

माधुर्य व्यंज्जकों से युक्त, समासरहिता या अल्प समास वाली रचना वैदर्भी रीति में होती है। कवि 'रसिक छैल' की अधिकांश रचनाएँ इसी रीति का आश्रय प्राप्त रचनायें हैं। यथा–

केश शिर सोहत ज्यों कारी घटा घिरि आई,
इन्द्र धनु भौंह नैन मीन अनियारी के।
वैन कोकिला के दंत विद्युत से राज रहे,
भूषण हू चमकें ज्यों दीप अँधियारी के।
'रसिक छैल' प्यारे की आगमन की आश लगी,
आँसू ढरकायें झर लाये वर सारी के।
नूपुर की शब्द मानों भौरगर सिंगार भई,
वर्ण सम अंग लसै प्यारी मतवारी के॥

इस रचना में सभी माधुर्य व्यजक हैं। सम्पूर्ण छन्द समास रहित होने के कारण वैदर्भी रीति से युक्त है।

गौड़ी–

ओजः प्रकाशकैर्वर्णे
समासबहुला गौड़ी ....[3]

ओज गुण को प्रकाशित करने वाले वर्णों के उद्भट बन्ध से युक्त तथा समास बहुला रीति गौडी कहलाती है। कवि 'रसिक छैल' की देश भक्ति पूर्ण रचनायें गौड़ी रीति में रचित हैं। यथा—

---

१. साहित्य दर्पण–विश्वनाथ कविराज-परिच्छेद ९ का. १ पृ. ४९८
२. वही वही वही का. २. पृष्ठ ४९९
३. साहित्यदर्पण–कविराज विश्वनाथ परिच्छेद ९ का. ३ पृ. ६००

निकस मियान घड़ी एक ना विराम लत,
चपला सी चमक्क शत्रु छाती विदार है।
विज्जुली झमक्के नहिं सक्के अरि नाशत में,
अश्वमार हातीशर वीरन में पार है॥
'रसिक छैल' सूजा के सुत हो जवाहर जू,
तेरी सब पैज पूरी राखी करतार है।
कट्ट कट्ट मुंडन के झुंड अवसिक्त करे,
अति ही प्रचण्ड वंड तेरी तरवार है॥

इस छन्द में 'चमक्क' 'विज्जुली' 'झमक्के' 'कट्ट' 'झुण्ड' आदि शब्द ओज व्यंजक वर्णों से युक्त हैं। ऐसे उद्भट वन्धों से युक्त यह रचना गौड़ी रीति में रचित रचना है।

पांचाली–

–वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः ।
समस्त पंचषपदो वन्धः पांचालिका मता ।[1]

प्रसाद-गुण के व्यंजक वर्णों से युक्त समस्त समासों वाली पांच या छः पदवन्धों वाली रचना पांचाली रीति की होती है। कवि 'रसिक छैल' ने पांचाली रीति को भी अपने काव्य का माध्यम वनाया है। हृदय के सहजभाव से निकली हुई कविता श्रोता व पाठक के मन पर पूर्णतः छा जाती है। इस प्रकार की प्रसाद गुण से सम्पन्न पांचाली रीति के उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं—

हँसत हिय में हरसाते घने,
दमकाते वु हरिन हारन के।
सिर सारी सुरंग सजाते भली,
जिहि में वहु पुंज सितारन के॥
दृग तीर चलाते 'सु छैल' घने,
कटते वहु काट नगारन के।

---

१. साहित्य दर्पण—कविराज विश्वनाथ परि. ९ का० ४ पृ० ६० १।

अलि जो कहुँ होते लला यि लली,
तो गरे कट जाते हजारन के ॥

यह रचना श्रोता व पाठक के तन पर स्वतः ही इतनी छा जाती है कि उसके मन में सहज 'अलि जो कहुँ होते लला यि लली' की गुंजन गूंजने लगती है। इसी प्रकार का एक और उदाहरण भी दृष्टव्य है—

नवला निकसी निरखं नगरी,
रंग रूप सजी रस रीत रली।
हँस हरे कहीं हरसाय हरी,
भ्रम सौं भटकी भई भेट भली ॥
दधि दान दऊँ दुगनों दिन है,
किमि घेरत गाँव गुपाल गली।
छवि 'छैल' छलै छल सौं छिटकी,
चट चित चितौनन न चोर चली।

मार्ग

मार्ग कवि की प्रवृत्ति के कारणभूत होते हैं। कवियों के अनेक स्वभाव होने से मार्ग भी असंख्य प्रकार की भिन्नता से युक्त हो सकते हैं फिर भी उनकी संख्या निर्धारित कर उन्हें तीन प्रकार का बतलाया गया है।

१. सुकुमार
२. विचित्र और
३. उभयात्मक (मध्यम)

सुकुमार

कवि की दोषहीन प्रतिभा से स्वत. स्फुरित नवीन शब्द तथा अर्थ में रमणीय, थोड़े से अलंकारों से युक्त तथा सहृदयाह्लादजनक मार्ग सुकुमार कहलाता है।[1] सुकुमार स्वभाव वाले कवि की सहज शक्ति भी सुकुमार होती है।

---

१. वक्रोक्ति जीवितम्—राजानक कुंतक—प्रथमोन्मेष का २५-२६ पृ. १०२-१०३

कवि 'रसिक छैल' की काव्य रचना का अधिकांश भाग शृंगार रस से परिपूर्ण है अतः उनका शृंगारी सुकुमार चित्त सुकुमार मार्ग के माध्यम से ही अपनी रचना परिस्फुरित कर सका है। सहज उद्भूत सौकुमार्य से मनोहर काव्य व्युत्पत्ति के कतिपय उदाहरण यहां द्रष्टव्य हैं—

भाई भली सी भोरी भामिनी की चितौन ऐसी,
तज्यो निजगेह गुन गरिमा गमाई है।
छाई है छबीली छवि नैनन 'रसिक छैल'
छांड़ि राग रंग रज अंगन रमाई है ॥
मार-मार तीर दृग-कोरन अनंग कैसे,
कीने हैं जर-जर ज्योति जीवन जगाई है।
हरे-हरे होटन में हंसन लुभानी हिय,
सांवरी-सलोनी सुचि सूरत समाई है ॥

श्रीकृष्ण की सांवली-सलोनी सूरत का मनोहारी वर्णन इस रचना में द्रष्टव्य है। सुकुमार चित्त में इसके श्रवण मात्र से ही श्रीकृष्ण के आकर्षक व्यक्तित्व का स्वरूप छा जाता है।

डारत कलंकहि कलानिधि निचोरे कैधों,
कैधों मन धीरज विदारिवे जमाई है ॥
नागरि सनाल मुख कंज तें लगी है कैधों,
मुख मनि दाँव अहि सूरत गमाई है ।
कीनों तम पान कै तमीपति के पाछेंपरी,
कैधों लट चटीला की वेणी में समाई है ॥

इस छन्द में कलंकहि कलानिधि-निचारो, मन-धीरज विदारिवे, नागरि सनाल मुख कंज तें लगी, मुख मणि दाँव अहि मूरत तथा कीनो तम पान कै तमीपति के पाछें परी आदि कथन ध्यंग्यात्मक भावों को प्रकट करते हुए वेणी के विविध सौन्दर्य को प्रस्तुत करने वाले हैं।

मध्यम मार्ग—

कवि प्रतिभाजन्य तथा कवि कौशल जन्य शब्द तथा अर्थ से रमणीय, सहृदयाह्लादकारक अलंकार एवं शब्द-शक्तियों से काव्य को मनोहर बनाने वाला सुकुमार व विचित्र मार्ग उभयात्मक रूप से मध्यम मार्ग कहलाता है।[1] सुकुमार और विचित्र के समन्वयात्मक स्वभाव में सुन्दर व्युत्पत्ति का उपार्जन मध्यम मार्ग के अभ्यास से ही संभव है। सुकुमार और विचित्र का धरातल कवि 'रसिक छैल' को कहीं-कहीं मध्यम मार्ग के द्वारा काव्य रचना में सहायक हुआ है। हेमन्त ऋतु वर्णन में कवि का प्रतिभाजन्य कौशल इस रचना में द्रष्टव्य है—

चलत समीर सीरी कंपित करत गात,
घाटी उष्णता हू उत भानु बलवंत की ।
इन्दु बीच शीतलता अधिक समाई आन,
सुन्दर हरियाली फली फूली दिगन्त की ॥
गोरे गात वारी रतनारे नैन रूप वारी,
चढ़त अटारी हुलसाय सेज कन्त की ।

१. वक्रोक्ति जीवितम्—राजानक कुंतक-प्रथमोन्मेषः का० ४८-५२
पृ. १४६-५०

'रसिक छैल' फूली समात नहीं चन्द्रमुखी,
हँस हिय लागी कह बधाई हेमन्त की ।।

शीतल वायु से कम्पित शरीर से लेकर चन्द्रमा की शीतलता और सर्वत्र छाई हरियाली का वर्णन करते-करते कवि नव-नवेली वधू के प्रिय मिलन तक में हेमन्त के वर्णन का स्वाभाविक स्वरूप प्रस्तुत करता है ।

भाषा शैली—

काव्य प्रतिभा की अभिव्यक्ति भाषा-शैली के माध्यम से हुआ करती है । लोक-जीवन में विचरण करने वाला शक्ति सम्पन्न कवि रचना के विचारों में तल्लीन रहता है । विचारों को दूसरों के निकट पहुँचाने के लिए भाषा की आवश्यकता होती है । शैली भाषा का वह प्राण तत्त्व है जो भाषा के द्वारा प्रसारित भावों को उत्कृष्ट रूप में उजागर करके श्रोता या पाठक के मनको सहज अपनी ओर आकर्षित कर लेता है । कवि 'रसिक छैल' राजघराने के व्यक्ति थे अतः उनकी भाषा में उच्च समाज की सम्पन्नता एवं अनेकों श्रोतों से प्राप्त ज्ञान की समृद्धता स्पष्ट रूप से झलकती है । साहित्य-सृजन और संगीत की मधुर ध्वनि से सम्पृक्त विचार ही उनके लिए जीवन्त स्वरूप प्रदान करने वाले रहे हैं । मानव जीवन में साहित्य एवं संगीत के महत्व को बतलाते हुए अपनी कविता "मैं किससे क्या पहचान करूँ" में लिखा है—

जिस जीवन में साहित्य नहीं,
उस जीवन ने क्या चक्खा है ।
जिस जीवन में कुछ राग नहीं,
उस जीवन में क्या रक्खा है ।
फिर ऐसे नीरस जीवन पर मैं,
क्यों मन में अभिमान करूँ ।
अपना पथ है दो ही क्षण का,
मैं किससे क्या पहचान करूँ ।।

कवि 'रसिक छैल' ने अपने काव्यात्मक विचारों को ब्रज भाषा के माध्यम से ही प्रस्तुत किया है । ब्रज क्षेत्र के प्रतिभावान इस कवि

। कार्य क्षेत्र ब्रज का शीर्ष स्थान मथुरा-वृन्दावन में विहार करने
ले श्रीकृष्ण का लीला स्थल रहा है। ब्रज भाषा के माध्यम से ब्रज
अनेकों लोकोक्तियों तथा मुहावरों को काव्यात्मक रूप दिया है।
विषय वर्णन इस प्रकार से है—

पर नमक छिड़कना—

हाँ वृजपति मत बात बनावे,
मत बुरके नमक जले पै।
नब टूट गई झगरे में।

तारे तोड़ना—

भोरहि बान मांगे है गोरस को बाट बीच,
करे झकझोरी नित्य आमत और जात में।
मटकी को डार और चूंदर रंगीली फार,
धमकी हू देत है अनोखी बात बात में॥
'रसिक छैल' भोरी वृज गोरी के भौन मांहि,
को चोरी बरजोरी करै माखन के खात में।
कारे कृष्ण प्यारे नैन तारे मतवारे 'छैल'
तोर डारे तारे सारे तारे भरी रात में॥

अनेक प्रयत्नों एवं कठोर परिश्रम के बाद यदि फल बहुत कम मिलता है तो उसके लिए ब्रज की आंचलिक भाषा में कहावत है "रातभर पीस्यौ और पारी मे सकेरो"। इसकाकवि ने अपनी काव्य प्रतिभा में इस प्रकार वर्णन किया है—

मिलन हेत आशा लता फूली सुग गौने की,
सबी लगत मीठो ज्यों दूध कंद भेल्यो है।
लामत में घूंघट उघार कहो आनन्द सो,
तो मिलन हेत में बहुत दुःख झेल्यो है॥
'रसिक छैल' पूजे कुल देवी और देव सब,
आधी रात बीते भामी गृह में ढकेल्यो है।
पहिले सिंगार पाछे नखरे में भोर भयो,
सारी रात पीस्यो और पारी में सकेल्यो है॥

'रसिक छैल' फूली समात नहीं चन्द्रमुखी,
हँस हिय लागी कह वधाई हेमन्त की ॥

शीतल वायु से कम्पित शरीर से लेकर चन्द्रमा की शीतलता और सर्वत्र छाई हरियाली का वर्णन करते-करते कवि नव-नवेली वधू के प्रिय मिलन तक में हेमन्त के वर्णन का स्वाभाविक स्वरूप प्रस्तुत करता है।

भाषा शैली—

काव्य प्रतिभा की अभिव्यक्ति भाषा-शैली के माध्यम से हुआ करती है। लोक-जीवन में विचरण करने वाला शक्ति सम्पन्न कवि रचना के विचारों में तल्लीन रहता है। विचारों को दूसरों के निकट पहुँचाने के लिए भाषा की आवश्यकता होती है। शैली भाषा का वह प्राण तत्त्व है जो भाषा के द्वारा प्रसारित भावों को उत्कृष्ट रूप में उजागर करके श्रोता या पाठक के मनको सहज अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। कवि 'रसिक छैल' राजघराने के व्यक्ति थे अतः उनकी भाषा में उच्च समाज की सम्पन्नता एवं अनेकों श्रोतों से प्राप्त ज्ञान की समृद्धता स्पष्ट रूप से झलकती है। साहित्य-सृजन और संगीत की मधुर ध्वनि से सम्पृक्त विचार ही उनके लिए जीवन्त स्वरूप प्रदान करने वाले रहे हैं। मानव जीवन में साहित्य एवं संगीत के महत्व को बतलाते हुए अपनी कविता "मैं किससे क्या पहचान करूँ" में लिखा है—

जिस जीवन में साहित्य नहीं,
उस जीवन ने क्या चक्खा है।
जिस जीवन में कुछ राग नहीं,
उस जीवन में क्या रक्खा है।
फिर ऐसे नीरस जीवन पर मैं,
क्यों मन में अभिमान करूँ।
अपना पथ है दो ही क्षण का,
मैं किससे क्या पहचान करूँ ॥

कवि 'रसिक छैल' ने अपने काव्यात्मक विचारों को ब्रज भाषा के माध्यम से ही प्रस्तुत किया है। ब्रज क्षेत्र के प्रतिभावान इस कवि

का कार्य क्षेत्र ब्रज का शीर्ष स्थान मथुरा-वृन्दावन में विहार करने वाले श्रीकृष्ण का लीला स्थल रहा है। ब्रज भाषा के माध्यम से ब्रज की अनेकों लोकोक्तियों तथा मुहावरों को काव्यात्मक रूप दिया है। कतिपय वर्णन इस प्रकार से है—

जले पर नमक छिड़कना—

हां वृजपति मत बात बनावे,
मत बुरके नमक जले पै।
नस टूट गई झगरे में।

तारे तोड़ना—

मोरहि बान मांगे है गोरस को बाह बीच,
करं झकझोरी नित्य आमत और जात में।
मटकी कों डार और चूंदर रंगीली फार,
धमकी हू देत है अनोखी बात बात में॥
'रसिक छैल' भोरी वृज गोरी के भौन मांहि,
की चोरी बरजोरी करं माखन के खात में।
कारे कृष्ण प्यारे नैंन तारे मतवारे 'छैल'
तोर डारे तारे सारे तारे भरी रात में॥

अनेक प्रयत्नों एवं कठोर परिश्रम के बाद यदि फल बहुत कम मिलता है तो उसके लिए ब्रज की आंचलिक भाषा में कहावत है "रातभर पीस्यो और पारी में सकेरो"। इसकाकवि ने अपनी काव्य प्रतिभा में इस प्रकार वर्णन किया है—

मिलन हेत आशा लता फूली सुग गौने की,
बची लगत मीठी ज्यों दूध कंद भेल्यो है।
लामत में घूंघट उघार कही आनन्द सो,
तो मिलन हेत में बहुत दुःख झेल्यो है॥
'रसिक छैल' पूजे कुल देवी और देव सब,
आधी रोत बीते भामी गृह में ढकेल्यो है।
पहिले सिंगार पाछे नखरे में भोर भयो,
सारी रात पीस्यो और पारी में सकेल्यो है॥

पद-लालित्य—

काव्य की संवेदनशीलता उसके पद-लालित्य पर निर्भर रहती है। यदि काव्य में कठिन पदों को काम में लिया जाता है तो उनके अर्थ भाव को समझने के लिए कोष की आवश्यकता होती है। इससे काव्य की रसानुभूति सहज नहीं हो पाती। कवि 'रसिक छैल' की रचनायें तो बहुत सरल और सरस पदों से गुम्फित हैं। लघु मात्रा में लिखी गई एक छन्द रचना द्रष्टव्य है—

परत न कल इन अँखियन तुम बिन,
सिसकत रहत न हर खत इन छन।
बरसत फिरत सुपरसन निश दिन,
विरह अगन दहकत मम सब तन ।।
सुमन खिलत चल पवन सनन सन,
बहुत दुखित यह रितु पति लखमन।
मत सकुचहु हँस जुग कर पकरत,
उठहु चलहु रिस तजहु रसिक मन ।।

इसी प्रकार एक रचना सर्व गुरु वर्णों में भी लिखी गई है—

एरी मेरी प्यारी छांड़ो कोरी कोरी बातें सारी,
तेरे नाहिं देखे फीको लागै खानों-पीनों री ।
छाती पीटूं डारूं रोऊं चैना हू ना पाऊं बोरी,
सांसें खेंचू ठंडी कैसो जादू तैंनें कीनो री ।।
पाछे का हू भूलो प्रीती टेढ़ी टेढ़ी बोलें चालें,
कैसी पीरा दीनी काहे मेरो हिया छीनो री ।
कीये जाओ 'घातें' और खोये जाओ नीकी रातें,
आंखें 'छैला' जौलों मोको जीनो तौलों सोनों री ।।

इस छन्द में कोई भी वर्ण लघु नहीं है सभी गुरु हैं।

ध्वनि की व्यंजकता

रमणीयता की दृष्टि से काव्य के तीन भेद किये जाते हैं। १. ध्वनि काव्य, २. गुणीभूत व्यंग्य काव्य और ३. चित्र या अलकार काव्य। श्रेष्ठ काव्य की पहिचान उसकी व्यंजकता पर निर्भर करती है। आचार्य मम्मट का कथन है—

इदमुक्तममतिशायिनी व्यङ्ग्ये वाच्याद्ध्वनिर्बुधैः कथितः ।[1]

जिस काव्य में वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ प्रधान हो उसे ध्वनि काव्य कहते हैं। ध्वनि काव्य श्रेष्ठतम काव्य कहलाता है।

कवि 'रसिक छैल' की रचनाओं में ध्वनि के अनेक उदाहरण मिलते हैं। कतिपय यहाँ द्रष्टव्य हैं—

श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का ध्वन्यात्मक वर्णन—

हँसते हिय में हरसाते घने,
दमकति सु हीरन हारन के।
सिर सारी सुरंग सजाते भली,
जिहिं में बहु पुंज सितारन के।।
द्रग तीर चलाते सु छैल घने,
करते बहु काट नगारन के।
अलि जो कहुं होते लला ये लली,
तो मरे कह जाते हजारन के।।

यहाँ 'द्रग तीर चलाना' तथा 'मरे कट जाना' में ध्वनि है। रूप सौन्दर्य पर हजारों लोगों के न्यौछावर होने के भाव को 'मरे कट जाते हजारन के' के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

प्रफुल्लित मन से मधुर हँसी हँसने वाले मनुष्य को सभी श्रद्धा और स्नेह से देखते हैं। किन्तु मुग्धा नायिका जब हँस कर किसी की ओर देखती है तो लगता है कि उसकी हँसी हृदय को चीर रही है। द्रष्टव्य है—

शोभा बीजुरी सी अर्द्ध चन्द्र सी स्वरूप ताको,
नीचे मुख सेजु करैं मदन को हार है।
लफ लफ नागिन सी पलहू न चैन परै,
जाकों हँस हेरैं ताको हृदय विदार है।
'रसिक छैल' नाहीं बड़े है मान मनिन के,
ऐसी करैं चोट कोऊ शब्द ना उचार है।
जाके तन लागै ताको नाश कर डारत है,
नयतो अनोखो ओर शीश पर वार है।।

---

१. काव्य प्रकाश—आचार्य मम्मट—प्रथम उल्लास—कारिका—४

अलंकार-विधान

अलंकार शब्द और अर्थ के उन अस्थिर धर्मों को कहा करते हैं जो शब्द और अर्थ की शोभा बढ़ाया करते हैं और काव्य के आत्म-भूत रस-भाव के अभिव्यंजन में सहायक हुआ करते हैं।[1] अलंकार को अस्थिर धर्म इसलिए कहा जाता है कि काव्य में इनकी स्थिति आवश्यक अथवा अनिवार्य नहीं होती। ये काव्य की शोभा और रस भाव की अभिव्यंजना के लिए ही प्रमुख रूप से काम में लाये जाते हैं। शब्द और अर्थ की दृष्टि से ये अलंकार दो प्रकार के होते हैं। (१) शब्दालंकार (२) अर्थालंकार।

कवि 'रसिक छैल' की कविताओं में इन दोनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग मिलना है। क्रमानुसार उनका वर्णन नीचे किया जा रहा है।

अनुप्रास—

अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।[2]

अर्थात्–अनुप्रास वह शब्दालंकार है जिसमें स्वर की असमानता होते हुए भी शब्द अथवा व्यंजन की समानता रहती है। जैसे—

चंचल चितौन सों चटाक चित्त चोर-चोर,
चन्द्रमुखी चोखी चन्द्रहास सी चलावती।
हेर-हेर हंसन सु हियरा हिरावै हाय,
हटकै हटीलो हाय होटन हलावती॥
'रसिक छैल' राजै रंगीली रली रूप राशि,
रीझै रिझवारन को रोकत रुलावती।
जग-जग जोति जुरी जोवन के जोर जाको,
जर-जर कीन्हो जग जरिन जलावती॥

इस छन्द में च, ह, र और ज वर्णों की अनेक वार आवृति हुई है। अतः यहाँ अनुप्रास अलंकार है।

---

१. शब्दार्थ यो रस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत्॥
साहित्यदर्पण–आ० विश्वनाथ–दशम परिच्छेदः– प्रथम श्लोक

२. साहित्यदर्पण– आ० विश्वनाथ–द० परि. ह. श्लोक

अनुप्रास अलंकार के पाँच भेद होते हैं । १. छेकानुप्रास, २. वृत्यनुप्रास, ३. श्रुत्यनुप्रास, ४. अन्त्यानुप्रास और ५. लाटानु- .. कवि 'रसिक छैल' के काव्य में अनुप्रास के इन सभी भेदों के उदाहरण प्राप्त होते हैं। जिनमें से प्रमुख अलंकार ही यहाँ वर्जित हैं ।

छेकानुप्रास :— छेकानुप्रास में एक या अनेक वर्णों की एक ही बार आवृत्ति होती है ।

वर्ण अनेक कि एक की आवृत्ति एकै बार ।
सो छेकानुप्रास है आदि अन्त निरधार ॥[1]

यथा—

ऐसी मदमाती काहे व्यर्थ इतराती मन
डोलै इठलाती चित्त फूली ना समाती है ।

यहाँ 'मदमाती' व 'मन' में पूर्व वर्ण 'म' की एक बार आवृत्ति तथा 'मदमाती' व 'इतराती' में अन्तिम वर्ण 'ती' की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास है ।

वृत्यनुप्रास :— वृत्यनुप्रास में एक या अनेक वर्णों की एक से अधिक बार आवृत्ति होती है ।

वर्ण अनेक कि एक की जँह सरि कियो बार ।
तो है वृत्त्यनुप्रास जो, परं वृत्ति अनुसार ।[2]

यथा—

सब बीत गई रस की रतियाँ,
मग मोहन मूरत ही मुख की ।
बट बागन बाखर बारिन तै,
मन मौज करी सगरे सुख की ॥
तब आँखन आँखन चाहत हीं,
अब आस टरी उनके मुख को ।
मन 'छैल' नहीं पल रैन परै,
कछु पार नहीं हमरे दुःख को ॥

---

१. अलकार परिजात–पन्चम परिच्छेद– पृष्ठ-६२
२. — वही — " ६३

यहाँ 'म' वर्ण, 'ब' वर्ण, आँखन वर्ण समूह तथा 'ख' वर्ण की अनेक वार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास है।

लाटानुप्रास :— लाटानुप्रास में ऐसे शब्दों या वाक्यों की आवृत्ति होती है जिनका अर्थ तो एक ही होता है किन्तु अन्वय करने मे तात्पर्य भिन्न हो जाता है।

शब्द अर्थ एकै रहै, अन्वय करतहि भेद।[3]

यथा—

घरकी है छाती कुच कोर कढ़ी आँगी खुली,
कंपत है गात मँहदी छूटी क्यों करकी।
करकी हरी चूरी फिरै अति घवरानी सी,
ढीले शृंगार सेज साजी किन सुघर की।

यहाँ 'करकी' शब्द की आवृत्ति हुई है। इसमें अन्वय से अर्थ भिन्न है। पहले 'करकी' का अर्थ 'हाथकी' से है। 'हाथ की मेंहदी छूट गई' तथा दूसरी 'करकी' का अर्थ 'टूटना' से है। हरी चूड़ियां पिय के मिलन के समय टूट गई। इस प्रकार यहाँ लाटानुप्रास हुआ।

यमक :— जब किसी शब्द या शब्द-समूह का एक से अधिक बार प्रयोग हो और प्रत्येक बार उसका भिन्न अर्थ अपेक्षित हो तब यमक अलंकार होता है।

वहै शब्द फिरि भिरि परै, अर्थ औरई और।
सो यमकालंकार है, भेद अनेकन ठौर॥[1]

यथा :—

ग्वालन टोली मलै मुख रोली,
करत ठठोली मानों या ही को राज।
गावत रसिया वन्यो रँग रसिया,
रसिक छैल सिर सोहै ताज॥

यहाँ 'रसिया' शब्द का अर्थ ब्रज का लोक गीत और दूसरे 'रसिया' का अर्थ मनमोहक स्वभाव वाला मदमस्त व्यक्ति होने के कारण यमक अलंकार हुआ।

---

३. अलंकार परिजात–पन्चम परिच्छेद–पृष्ठ–६४
१. — वही — ,, ६५

पुनरुक्ति प्रकाश :— जब एक ही शब्द एक से अधिक बार आवे और उसका रूप और अर्थ एक ही हो तो पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार होता है।

एक शब्द बहु बार जँह परै रुचिरता अर्थ।
पुनरुक्ती परकास सो बरनै बुद्धि समर्थ ॥[2]

यथा :—

चंचल चितौन सों चटाक चित्त चोर-चोर,
चन्द्रमुखी चोखची चन्द्रहास सी चलावती।
हेर-हेर हंसन सु हियरा हिरावै हाय,
हटकै हटीलो हाय होट न हलावती ॥
रसिक छैल राजै रंगीलो रली रूप राशि,
रीझे रिझ यारन को रोकल रुलावती।
जगमग जोति जुरी जोवन के जोर जाकी,
जर-जर कीन्हीं, जग,जारिन जलावती ॥

यहाँ 'चोर-चोर' हेर-हेर', 'जर-जर' शब्द दो बार आये हैं। जिससे छन्द का सौन्दर्य बढ़ गया है। अतः यहाँ पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।

अर्थालंकार

उपमा :— जब वर्ण्य वस्तु की रूप, रंग या गुण में अवर्ण्य वस्तु से समानता करते हैं तब उपमा अलंकार होता है।

रूप रंग गुण काहु को काहू के अनुसार।
ताको उपमा कहत हैं जे सुबुद्धि आगार ॥[1]

यथा :—

उमड़-घुमड़ के घन चाले हैं श्वेत श्याम,
प्रलय की घटा आज सारो ब्रज घिरगो।

यहाँ श्वेत श्याम बादलों की उमड़-घुमड़ स्थिति की तुलना प्रलय की घटनाओं से की गई है।

---

२. अलंकार परिजात–पन्चम परिच्छेद– पृष्ठ–६९
१. अलंकार पारिजात–पन्चम परिच्छेद पृष्ठ–७६

रूपक :— जब उपमेय और उपमान एक ही रूप हो जायें तब रूपक अलंकार होता है।

उपमेय रु उपमान जब एक रूप ह्वै जाहि।[2]

यथा :—

भवन हमारे एक आई ही मयंक मुखी,
हिय उसगानों ज्यों कमल खिलै भोर में।

यहाँ मुख के सौन्दर्य की तुलना चन्द्रमा से करनी चाहिए किन्तु कवि ने चन्द्र और मुख को एक रूप बनाकर मयंक मुखी कहा है जिससे रूपक अलंकार हुआ।

उत्प्रेक्षा :— जब उपमेय में उपमान की संभावना की जाय तब उत्प्रेक्षा अलंकार होता है।

आन बात को आन में, जहँ संभावन होय।
वस्तु हेतु फल युत कहत, उत्प्रेक्षा है सोय॥[3]

यथा :—

केश शिर सोहत ज्यौं कारी घटा घिरि आई,
इन्द्रधनु भौंह नैन मीन अनियारी के।
बैन कोकिला से दंत विद्युत से राज रहे,
भूषण हू चमकैं ज्यौं दीप अँधियारी के।
'रसिक छैल' प्यारे की आमन की आश लगी,
आँसू ढ़रकावैं झर लाये बरसारी के॥
नूपुर को शब्द मानों झींगर झिगार भई,
चन्द्र सम अंग लसैं प्यारी मतवारी के॥

यहाँ सम्पूर्ण पद में उत्प्रेक्षा अलंकार द्रष्टव्य है।

अतिशयोक्ति :— जब किसी अत्यन्त प्रशंसा के लिए बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बात कही जाय तब अतिशयोक्ति अलंकार होता है।

---

२. अलंकार पारिजात-पन्चम परिच्छेद पृष्ठ-६१
३. " " " ६५

जहँ अत्यन्त सराहिबो, अतिशयोक्ति सु कहन्त ।
भेदक, संबंधा, चपल, अक्रम, रूप अनन्त ॥[1]

यथा :—

निकस मियान घड़ी एक ना विराम लेत,
चपला सी चमक्क शत्रु छाती विदार है ।
बिज्जुसी झमक्के नहि सक्के अरिलाशत में,
अश्वमार हातीमार वीरन में पार है ।
'रसिक छैल' भुजा के सुत हो जवाहर जू,
तेरी सब पंज पूरी राखी करतार है ।
कट्ट-कट्ट मुंडन के झुंड अनगिनत करे,
अति ही प्रचंड बंड तेरी तरवार है ॥

यहाँ वीरता की अत्यन्त प्रशंसा की गई है । जिसके कारण अतिशयोक्ति अलंकार है ।

स्वभावोक्ति :— जहाँ किसी पशु, पक्षी तथा बालक आदि का स्वाभाविक एव चमत्कार पूर्ण वर्णन हो वहाँ स्वभावोक्ति अलंकार होता है ।

जाको जैसो होय सो बरनत जहाँ सुभाव ।
तहाँ 'जाति' यह नाम कहि बरनत सब कविराव ॥[2]

यथा :—

कूद्यो कान्ह जमुना में पलको न कीनो बेर,
तारन को भक्त निज करत खिलूरियाँ ।
'रसिक छैल' सुनत अवाज धायो काली हवो,
युद्ध ते करन लाग्यो जोर भर पूरियाँ ॥
हार्‌यो नागराज पै न बाँध सक्यो ब्रजराज,
गहिमुख तोर दई जाकी दतुरियाँ ।
नाचे संग ताल दोनों करमें गहे नाथ लाल,
मटकें सरोज नैन लटकें लट्रियाँ ॥

---

१. अलंकार पारिजात–पन्चम परिच्छेद पृष्ठ–१२५
२. " " " १६२

रूपक :— जब उपमेय और उपमान एक ही रूप हो जायें तब रूपक अलंकार होता है।

उपमेय रु उपमान जब एक रूप ह्वै जाहि।[2]

यथा :—

भवन हमारे एक आई ही मयंक मुखी,
हिय उसगानौं ज्यों कमल खिलै भोर में।

यहां मुख के सौन्दर्य की तुलना चन्द्रमा से करनी चाहिए किन्तु कवि ने चन्द्र और मुख को एक रूप बनाकर मयंक मुखी कहा है जिससे रूपक अलंकार हुआ।

उत्प्रेक्षा :— जब उपमेय में उपमान की संभावना की जाय तब उत्प्रेक्षा अलंकार होता है।

आन बात को आन में, जहँ संभावन होय।
वस्तु हेतु फल युत कहत, उत्प्रेक्षा है सोय॥[3]

यथा :—

केश शिर सोहत ज्यों कारी घटा घिरि आई,
इन्द्रधनु भौंह नैन मीन अनियारी के।
बैन कोकिला से दंत विद्युत से राज रहे,
भूषण हू चमकैं ज्यों दीप अँधियारी के।
'रसिक छैल' प्यारे की आमन को आश लगी,
आँसू ढ़रकावैं झर लाये बरसारी के॥
नूपुर को शब्द मानौं झींगर झिगार भई,
चन्द्र सम अंग लसैं प्यारी मतवारी के॥

यहां सम्पूर्ण पद में उत्प्रेक्षा अलंकार द्रष्टव्य है।

अतिशयोक्ति :— जब किसी अत्यन्त प्रशंसा के लिए बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बात कही जाय तब अतिशयोक्ति अलंकार होता है।

---

२. अलंकार पारिजात-पन्चम परिच्छेद पृष्ठ—६१
३. " " " ६५

जहँ अत्यन्त सराहिवो, अतिशयोक्ति सु कहन्त ।
भेदक, संबंधा, चपल, अक्रम, रूप अनन्त ॥[1]

यथा :—

निकस मियान चढ़ो एक ना विराम लेत,
चपला सो चमचक शत्रु छाती विदार है ।
बिज्जुसो झमक्के नहिं सक्के अरिनाशत में,
अश्वमार हातीमार वीरन में पार है ।
'रसिक छैल' सूजा के सुत हो जवाहर जू,
तेरो सब पंज पूरो राखो करतार है ।
कट्ट-कट्ट मुंडन के झुंड अनगिनत करे,
अति ही प्रचंड बंड तेरी तरवार है ॥

यहाँ वीरता की अत्यन्त प्रशंसा की गई है । जिसके कारण अतिशयोक्ति अलंकार है ।

स्वभावोक्ति :— जहाँ किसी पशु, पक्षी तथा बालक आदि का स्वाभाविक एवं चमत्कार पूर्ण वर्णन हो वहाँ स्वभावोक्ति अलंकार होता है ।

जाको जैसो होय सो बरनत जहाँ सुभाय ।
तहाँ 'जाति' यह नाम कहि बरनत सब कविराय ॥[2]

यथा :—

कूद्यो कान्ह जमुना में पलकी न कीनी वेर,
तारन को भक्त निज करत छिलूरियाँ ।
'रसिक छैल' सुनत अवाज धायो कालो ह्वां,
युद्ध ते करन लाग्यो जोर भर पूरियाँ ॥
हार्यो नागराज पै न बाँध सक्यो ब्रजराज,
गहिमुख तोर दई जाकी दतुरियाँ ।
नाचें संग ताल दोनों करमें गहें नाथ सात,
मटकें सरोज नैन लटकें लटूरियाँ ॥

---

१. अलंकार पारिजात–पन्चम परिच्छेद पृष्ठ–१२५
२. " " " १६२

यहाँ बालक कृष्ण की नाग-नाथने की लीला का स्वाभाविक वर्णन किया गया है। काली दह के अत्यन्त भयानक नाग को नाथ करके श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हो रहे हैं।

व्याजोक्ति :— जहाँ किसी बात का भेद प्रकट होने को हो, पर उसे किसी बहाने से छिपा लिया जाय, वहाँ व्याजोक्ति अलंकार होता है।

और हेतु वचननि जहां आकृति गोपन होय।
व्याज-उक्ति तहँ कहत कवि ग्रन्थ समुद्र बिलोय ॥[1]

यथा :—

कोई गोपी छुपके-छुपके श्रीकृष्ण से मिलने के लिए एकान्त स्थान पर चली गई। उसके पृष्ठ भाग पर वस्त्रों में मिट्टी लगी हुई देखकर अन्य गोपियाँ समझ गईं कि यह श्रीकृष्ण से मिल कर लौटी है। पूछने पर उसने भेद को प्रकट न होने के लिए बहाना बनाते हुए कहा—

पूछत बताओ मैं बिलोकी नई बात एक,
न्हान कों गई ही संग सखियन सों भटकी।
बन में मिल्यो हो एक श्याम अलबेलो छैल,
छोहरा अनोखो जो ठड़ो हो छाँह बटकी ॥
'रसिक छैल' धायो औ गहि कुच दाबे कछु,
दन्त में कपोल दाब नीवी हँस झटकी।
भरकें निशंक अंक भूमि पैं पधारी आन,
कहो सखि वाकी मो सौं कौन आँट अटकी ॥
'मो सौं कौन आँट अटकी' में व्याजोक्ति विद्यमान है।

छन्द-योजना

कवि 'रसिक छैल' ने अपनी काव्य धारा को अनेक छन्दों के माध्यम से प्रवाहित किया है। ब्रज के प्रचलित लोक गीतों की स्वर लहरियों के अतिरिक्त प्रसिद्ध छन्दों को भी उन्होंने अपनाया। छन्द चाहे छोटा हो या बड़ा काव्य की रस-रमणीयता को निरन्तर सुदृढ़

---

१. अलंकार पारिजात—पन्चम परिच्छेद पृष्ठ—१८१

करना जान पड़ता है। यद्यपि प्रत्येक कवि अपनी रस परम्परा के अनुसार ही छन्दों का चयन करते हैं किन्तु रस सिद्ध कवीश्वरों की लेखनी स्वयं ही छंदो बद्ध रहती है। कतिपय जिन विशिष्ट छंदों का कवि 'रसिक छैल' ने अपनाया उनसे दोहा, सोरठा, सवैया कुण्डलिया मोतीदाम, मत गयन्द तथा तोटक छंद हैं। उदाहरणों की दृष्टि से इनका वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

दोहा :—

दोहा छंद के प्रथम और तृतीय चरण में १३-१३ मात्रायें तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में ११-११ मात्रायें होती हैं।

यथा :—

| | | | | | S | | | S=१३ | | | | | S | S |=११
इमि जब सब भोजन लगी, कहि रहि गई थकाय।
| | | | S | | S | | |=१३ | | S | | | | S |=११
कहन लगे मधुरे वचन, तब मोहन मुसकाय॥

सोरठा :—

सोरठा छन्द दोहे के उल्टा होता है। इसके प्रथम व तृतीय चरण में ११-११ मात्रायें तथा द्वितीय व चतुर्थ चरण में १३-१३ मात्रायें होती हैं।

S | | S | | S |=११ | | S | | | | S | S=१३
कौतुक बेष नवीन, मन मोहन हँसिवे लगे।
| | | | | | | | S |=११ | | | | S S | | | S=१३
नटघट नटवर कीन्ह, पुनि कस में बैठन लगी॥

सवैया :—

सवैया में २२ से २६ वर्ण तक हो सकते हैं। अन्त में कहीं-कहीं दो गुरु और कहीं-कहीं एक लघु तथा एक गुरु भी हो सकता है। मत्त गयन्द सवैये में आठ सगण होते हैं। कुल २४ वर्ण।

यथा :—

| | S | | S | | S | | S,
किमि काँपत शीत सखी सिगरी,

मोतीदाम :—

इसे संस्कृत में 'मौक्तिकदाम' कहा जाता है। 'चतुर्जगणं वद मौक्तिमदाम' अर्थात् मौक्तिमदाम छन्द प्रत्येक चरण में चार जगण होते हैं।

यथा :—

I S I I S I I S I I S I
चलीं जलतें सिगरी सरमात
कछु मुख मोर कछू हरषात।
किती धर आँचल ऊपर हात,
किती कुच बाहू न बीच छुपात॥
किती नहिं ऊपर शीश उठात,
किती धन केश न अंग दुरात।
किती निकसी तटपै अंग रात,
किती नव नैनन नीर बहात।
गुपाल तवै हँस तीर बुलात,
सनेह सने शुचि वैन सुनात॥
कदम्ब तने चल जोरत हात,
अनंग भरी निज बसन पात॥

तोटक :—

'इह तोटकमम्बुधिसैः प्रथितम्' तोटक छन्द के प्रत्येक चरण में चार सगण होते हैं। प्रत्येक चरण के पश्चात् यति होती है।

यथा :—

I I S I I S I I S I I S,
शुचि आय गई रमनी रजनी,
ग्रह 'छैल' चली सगरी सजनी।
कटि किंकणि साज लई यजनी,
पुनि पांयन पांवरिया भजनी॥

भाव-पक्ष

'वाक्य रसात्मक काव्यम्'। अर्थात् रसात्मक वाक्य ही काव्य कहलाता है। इस कथन से स्पष्ट प्रकट होता है कि जिस रचना में

I I S I . I S I I S . I I S.

नहि लाभ लहा इतना हटतें ।

अरु एकई एक करो विनती,

मत बेर करो गहिये झटतें ॥

कहि 'छैल' न काज बनें झगरे,

दुःख लाज तजो अपने घटतें ।

हम सें अपने पट लैन चहों,

कर जोर कटो जमुना तटतें ॥

धनाक्षरी :—

धनाक्षरी छन्द के प्रत्येक चरण में ३१ वर्ण होते हैं । इसमें ८, ८, ८ तथा ८ पर यति अथवा १६, १५ पर यति होती है ।

यथा :—

केतकीय कुन्द कचनारन कमल कोर,

किंशुक कनेर कमनीय झुक झूली हैं ।

सौं न जुही सेवती निवारी चंप सोसनोसु,

गेंदा गुलदाव दी गुलाव सी अतूली हैं ॥

उपमा वखानत वनें न तिहि औसर की,

'छैल' की कहै को कवि शेष मति भूली है ।

ऐसी चहुँ ओरन सजी है चारु चीरन सौं,

मानों रंग रंगन कदम्ब डार फूली है ॥

कुण्डलिया :—

कुण्डलिया छन्द दोहा तथा रोला से मिल कर वनता है । इसमें ६ चरण होते हैं । दो दोहा के और चार रोला के । प्रत्येक में २४ मात्रायें होती हैं । दोहा के अन्तिम चरण को रोला के प्रथम चरण में तथा प्रारम्भ के शब्द को समाप्ति के शब्द में दोहराते हैं ।

जब सब मज्जन कर चुकी, नवल नार सुकुमार ।

इत उत तट हेरन लगीं, जहँ पट धरे उतार ॥

जँह पट धरे उतार एक नहि दीखे सारी ।

अक चकाय घवराय सकुच मन भई दुखारी ॥

'रसिक छैल' कर सोच परस्पर भाषहि यों तब ।

अब घर उत्तर देंहि कौन पूछहि गुरु जन जब ॥

मोतीदाम :—

इसे संस्कृत में 'मौक्तिकदाम' कहा जाता है । 'चतुर्जगणं वद मौक्तिमदाम' अर्थात् मौक्तिमदाम छन्द प्रत्येक चरण में चार जगण होते हैं ।

यथा :—

I S I I S I I S I I S I
चलीं जलतें सिगरी सरमात
कछु मुख मोर कछू हरपात ।
किती धर आँगन ऊपर हात,
किती कुच बाहु न बीच दुपात ।।
किती नहिं ऊपर शीश उठात,
किती घन केश न अंग दुरात ।
किती निकसी तटपे अंग रात,
किती नय नैनन नीर बहात ।
गुपाल तबै हँस तीर बुलात,
सनेह सने शुचि बैन सुनात ।।
कदम्ब तनै चल जोरत हात,
अनंग भरी निज बसन पात ।।

तोटक :—

'इह तोटकमम्बुधिसैः प्रथितम्' तोटक छन्द के प्रत्येक चरण में चार सगण होते हैं । प्रत्येक चरण के पश्चात् यति होती है ।

यथा :—

I I S I I S I I S I I S,
शुचि आय गई रमनी रजनी,
ग्रह 'छैल' चली सगरी सजनी ।
कटि किंकणि साज लई बजनी,
पुनि पाँयन पाँवरिया भजनी ।।

भाव-पक्ष

'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' । अर्थात् रसात्मक वाक्य ही काव्य कहलाता है । इस कथन से स्पष्ट प्रकट होता है कि जिस रचना में

रस नहीं होता वह रचना ही नहीं है अपितु वर्णों का संघटनात्मक रूप है। काव्य ब्रह्मानन्द के समान आनन्द देने वाला होता है। हृदय-आह्लादक काव्य में रस की प्रधानता होती है जो रचना 'सद्यः पटनिवृत्तये' के गुण से परिपूर्ण होती है वही श्रोता या पाठक को अपनी ओर आकर्षित कर पाती है। पढ़ने या श्रवण मात्र से जो आनन्द देने वाला काव्य होता है वही श्रेष्ठ काव्य कहलाता है। इसीलिए यह माना गया है कि कवि के मन में सर्वप्रथम रस का उद्भव होता है वह तदनुरूप काव्य की कथा वस्तु का चयन करता है और उस कथावस्तु को रस की मधुरता में सिक्त करके पाठक या श्रोता के पास आनन्द प्रदान हेतु प्रेषित करता है। काव्य शास्त्रों में मुख्यतः नव रस माने गये हैं। ये हैं शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त। इसके अतिरिक्त भक्ति और वात्सल्य रस की स्थापना भी अलग से की गई है। कवि 'रसिक छैल' ने अपनी रचनाओं में सभी प्रकार के रसों का वर्णन किया है। लक्षण सहित इनके उदाहरण आगे दर्शाये जायेंगे। उनके एक छन्द में नव रसों की गणना इस प्रकार प्राप्त होती है—

शनि जब आवत है चौथो पुनि मांस अन्त,
कोई कह करुण को करुणा जनाते हैं।
एक वीर रौद्र वीभत्स और भयानक कहैं,
जेते हैं प्रसन्न मन हास्य को सुनाते हैं॥
जिनका है शान्त मन शान्त का ही ध्यान धरैं,
भक्ति करन हारे अद्भुत मनाते हैं।
'रसिक छैल' चित्त को न भाते ये आठो रस,
सुन्दर संयोग शृंगार सज बनाते हैं॥

इस छन्द में एक ओर जहाँ नव रसों की गणना की गई है वहीं कवि ने यह भी प्रकट कर दिया है उनकी दृष्टि में चित्त को भाने वाला रस संयोग शृंगार है। राजघराने के परम्परागत नियमों से संस्कारित कवि मन शृंगार की ओर ही अधिक आकृष्ट रहा है। यों भी शृंगार को रसों का सम्राट रस कहा जाता है। शेष रस किसी न किसी रूप से शृंगार रस से ही प्रभावित होते रहते हैं। एक

प्रकार से शृंगार रंजित मन जीवन के आनन्द मय स्वरूप को जीने के लिए उल्लसित रहता है। आचार्य भरतमुनि के अनुसार स्थायी भावों के साथ विभाव, अनुभाव तथा सञ्चारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। (विभानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्र सनिष्पत्तिः) रसास्वादन की यह प्रक्रिया इस प्रकार है। सहृदयजनों के हृदय में रति आदि भाव वासना रूप से सदा विद्यमान रहता है। आलम्बन विभाव के द्वारा वह स्थायी भाव आविर्भूत हो जाता है और उद्दीपन विभाव द्वारा प्रदीप्त हो जाता है। अनुभाव उसको प्रतीति योग्य बना देते हैं एवं व्यभिचारी भाव उसको परिपुष्ट कर देते हैं। इस प्रकार इन सबके संयोग से स्थायी भाव व्यंजना वृत्ति द्वारा व्यक्त होकर आस्वादन योग्य बन जाता है। इस प्रक्रिया में काम आने भावों में विभाव, अनुभाव, व्यभिचारिभाव और स्थायी-भाव ही प्रमुख होते हैं। विभाव के दो भेद हैं— (१) आलम्बन और (२) उद्दीपन।

अनुभाव विभावों के संयोग के पश्चात् होने वाली क्रियायें हैं। जैसे भ्रूसंचालन, हाथ-पैर हिलाना आदि। व्यभिचारी भावों की संख्या ३३ होती है। तथा स्थायीभाव आठ हैं जो इस प्रकार हैं- रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा और विस्मय। काव्य के आत्मरूप इन रसों के समस्त भेदों के उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं।

शृंगार रस :— शास्त्रों में शृंगार शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार कही गई है— शृङ्गस्य आगमनं हेतुर्यस्य स शृङ्गारो रस.। रति प्रकृतिक रस ही शृंगार रस है। शृङ्गार रस का स्थायीभाव रति है। मन के अनुकूल पदार्थों में सुखानुभूति ही रति कहलाती है। शृङ्गार के आलम्बन विभाव नायक तथा नायिका होते हैं। उद्यान चन्द्रिका आदि उद्दीपन विभाव होते हैं। भ्रू विक्षेप, कटाक्ष आदि अनुभाव तथा लज्जा, हास इत्यादि व्यभिचारी भाव होते हैं। शृङ्गार के दो भेद होते हैं— (१) सम्भोग (संयोग) और (२) विप्रलम्भ।

संभोग (संयोग) शृङ्गार :— परस्पर अनुराग युक्त नायक-नायिका के दर्शन, स्पर्शन आदि के वर्णन द्वारा जहाँ शृङ्गार रस की अनुभूति

होती है, वह संयोग शृङ्गार रस कहलाता है। इस पारस्परिक प्रेम में दर्शन, स्पर्शनादि असंख्य रतिकेलियाँ होती हैं। अतः इस क्रम से सम्भोग शृङ्गार अनन्त प्रकार का हो सकता है। नायक एवं नायिका की रतिभावना के आधार पर इसे दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। (१) नायिकारब्ध और (२) नायकारब्ध।

नायिकारब्ध सम्भोग शृङ्गार :— नायिकारब्ध सम्भोग शृंङ्गार में प्रथम काम विकार से युक्त मुग्धा नायिका द्वारा आरब्ध सम्भोग शृङ्गार का वर्णन किया जाता है। कवि 'रसिक छैल' की इस रचना में नायिकारब्ध सम्भोग शृङ्गार का वर्णन दृष्टव्य है—

पूछत वताओ मैं विलोकी नई वात एक,
नहान कों गई ही संग सखियन सों भटकी।
वन में मिल्यौ हौ एक श्याम अलवेलौ छैल,
छोहरा अनौखौ जो ठाड़ौ हौ छाह वटकी॥
'रसिक छैल' धायौ औ गहि कुच दावे कछु,
दन्त में कपोल दाव नीवी हँस झटकी।
भर कें निशंक अंक भूमि पै पधारी आन,
कहौ सखि वाकी मोसौं कौन आँट अटकी॥

इस रचना में प्रथम काम विकार से युक्त मुग्धा नायिका द्वारा आरब्ध सम्भोग शृंगार का वर्णन किया गया है। यहाँ पर 'श्याम अलवेलौ छैल' नायक आलम्वन है। 'वन' का एकान्त वास उद्दीपन, कुच दवाना, दन्त में कपोल दवाना, नीवी झटकना आदि अनुभाव हैं। लज्जा, हर्ष, वीड़ा एवं चपलतादि व्यभिचारी भाव हैं।

नायकारब्ध सम्भोग शृङ्गार :— नायकारब्ध सम्भोग शृङ्गार में नायक द्वारा आरब्ध सम्भोग शृंगार का वर्णन किया जाता है। निम्न लिखित छन्द में इसका वर्णन देखा जा सकता है—

लागै ना औसर वहु चौसर की चाल चली,
देख अँधियारी फिरत प्यारी की घात में।
'रसिक छैल' छाती लिपटाई अकेली देख,
सोई ही अटारी मलै चन्दन सुगात में॥

चूमें अधर-अधर कटि सों किलोल करो,
खोल कंचुकी कों कुच दाबे हँस हाथ में।
प्रेम रति न्यारे ह्वै नैन रतनारे भये,
रंग रस रति रचे तारे भरी रात में॥

इस छन्द में नायिका आलम्बन है। तारे भरे अँधियारी रात उद्दीपन, अधर चूमना, कन्चुकी खोलकर कुच दबाना आदि अनुभाव तथा लज्जा से रतनारे नैन, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव हैं।

विप्रलम्भ शृंगार :— जहाँ नायक-नायिका में गाढ़-अनुराग होता है किन्तु परस्पर मिलन नहीं हो पाता वहाँ विप्रलम्भ शृंगार होता है। यह विप्रलम्भ शृंगार पाँच हेतुक प्रकार का होता है। (१) अभिलाषा-हेतुक (२) विरह हेतुक (३) ईर्ष्या हेतुक (४) प्रवास हेतुक और (५) शाप हेतुक।

अभिलाषा हेतुक विप्रलम्भ शृंगार :— उन दो प्रेमियों का पारस्परिक प्रेम जिनको मिलने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ हो अभिलाषा हेतुक विप्रलम्भ शृङ्गार होता है। कवि 'रसिक छैल' के इस छन्द में—

सबरे जग के पुनि हेरि करे,
मन सुबस सदा चित्त सों सटक्यो है।
नहिं बात कछु कहि ये सजनी,
अब संग सखा सब ही बिछर्यो है॥
बिन तो नहिं और कछू जग में,
हमरो जियरा तुम सो अटक्यो है।
सब लोग भले पगिया पलटें,
हमने तुम सो जियरा पलट्यो है॥

यहाँ दो प्रेमियों के परस्पर प्रेम भाव को एक ही साथ बड़ी कुशलता से वर्णित किया है। यह अभिलाषा हेतुक विप्रलम्भ शृंगार का बहुत ही सुन्दर उदाहरण है।

विरह हेतुक विप्रलम्भ शृंगार :— मिलन के पश्चात् दोनों में से एक के अनुराग शून्य होने पर अथवा अनुराग होने पर भी दैव वश या गुरजनों से लज्जा आदि के कारण समीप रहने पर भी पुनः मिलन न

होने पर विरह हेतुक विप्रलम्भ श्रृंगार होता है। 'रसिक छैल' की इस रचना में :—

उड़ जात नींद सूनी सेज नांहि नीकी लगे,
सिर को ना दर्द जात काई खसबोई सों ।
धीरता रहे ना और वीरता रहे नां नैंक,
ध्यान हट जात तीखी सेल औ सिरोही सौं ॥
'रसिक छैल' कैसी द्विविधा में फँस्यो है मन,
चित्त ना लगत काहू जग को हँसो ही सौं ।
छूट जात खान-पान कछु ना सुहात तब,
मन लग जात जब काहू निरमोही सौं ॥

यहाँ प्रेमी के बिना नींद का उड़ जाना, सूनी सेज अच्छा न लगना ये सब विरह हेतुक विप्रलम्भ श्रृंगार के कारण हैं।

ईर्ष्या हेतुक विप्रलम्भ श्रृंगार :— ईर्ष्या शब्द उपलक्षण मात्र है इससे मान हेतुक विप्रलम्भ लक्षित होता है । सपत्नी में अनुरक्त नायक के प्रति कोप अथवा ईर्ष्या से या प्रणय के कारण को मान होता है उससे होने वाला विप्रलम्भ ईर्ष्या हेतुक कहलाता है । 'रसिक छैल' के इस गीत में ईर्ष्या हेतुक विप्रलम्भ श्रृङ्गार का सुन्दर वर्णन किया गया है :—

विष बांधे चुदरिया की छोर,
बलम तुम पे मर जाऊँगी ।
बाट तकत मोहे रैन बीत गई,
तुम आये भये भोर ।
नीर बहत दोनों नैनन सों,
जियरा लेत हिलोर ॥
सोतन के घर सौ-सौ फेरे,
काह न आये घर मोर ।
रसिक छैल मोहे दर्शन दीजें,
बृजपति हृदय चकोर ॥

इस लोक गीत में सपत्नी में अनुरक्त नायक के प्रति नायिका का कोप जनक प्रणय दर्शाया गया है। इसके साथ ही उस मानिनी का मान भी इन पंक्तियों से प्रकट होता है।

प्रवास हेतुक विप्रलम्भ शृंगार :— दो अनुरक्त व्यक्तियों का कार्य-वश भिन्न-भिन्न प्रदेशों में रहना प्रवास हेतुक विप्रलम्भ शृंगार कहलाता है। प्रोषित पति का नायिका इसका प्रमुख कारण होती है। कवि 'रसिक छैल' इस रचना में प्रवास हेतुक विप्रलम्भ शृंगार दृष्टव्य है :—

भोरहि चली नीर भरिये सुगगरियाले,
संग सखियान सों जमुना के तट गई।
देख्यो नयन इत ताहि कृष्ण कान्ह प्यारे को,
कटि के बहानों नेक पीछे कूँ हट गई॥
देके कर कागद कही कुबजा सों प्रीति भई,
भूले हैं नाथ प्रीत तुम सों क्यों घटि गई।
तीखे सुन बैन नैन अँसुआ ■ भरि आये,
पाती कहा बाँची प्यारी छाती सी फटि गई॥

इस छन्द में प्रोषित पति का नायिका का बहुत सुन्दर वर्णन किया है।

शाप हेतुक विप्रलम्भ शृंगार :— शाप के कारण होने वाला विप्रलम्भ शाप हेतुक विप्रलम्भ शृङ्गार कहलाता है। शाप के कारण जिस वियोग की अनुभूति होती है उसमें संयोग का स्मरण विद्यमान रहता है। कवि 'रसिक छैल' ने अपने इस छन्द में इसका सुन्दर वर्णन किया है :—

सब बीत गईं रस की रतियाँ,
मग मोहन मूरत ही मुख को।
घट बागन बाखर बारिन तें,
मन मौज करो सगरे सुख को॥
तब आँगन-आँगन चाहत हों,
अब आस टरी उनके सुख को।
अब 'छैल' नहीं पल रैन परें,
कछु पार नहीं हमरे दुःख को॥

यहाँ वियोगावस्था में संयोग के सुखद क्षणों की अनुभूति का स्मरण करके नायिका को अपार दुःख की विरह पीड़ा सता रही है।

२. हास्य रस :— हास्य रस हास प्राकृतिक होता है। हास्य रस का स्थायी भाव हास है। हास में वाणी-वेशादि की विकृतियों के द्वारा चित्त का विकास होता है। विकृत आकार तथा चेष्टादि वाला व्यक्ति हास्य रस का आलम्बन होता है, उसकी चेष्टाएँ उद्दीपन होती हैं, नेत्र संकोच, मुस्कराना आदि अनुभाव होते हैं तथा आलस्य आदि इसके व्यभिचारी भाव होते हैं। 'रसिक छैल' के इस छन्द में हास्य रस का उदाहरण मिलता है :—

छांड्यौ है भारत बहु डोलन में बन्द भई,
लाखों की तमाखू आज यूरुप को जात है।
बन कें सिगरेट लौट आवे सो सुन्दर ह्वै,
पीवत सुगन्ध उड़ै धूप हू लजात है ॥
कोई याहि पीवैं नांक में चढ़ावत है,
कोई डार पान में प्रसन्न मन खात है।
मेरा है कहना ना औसर को त्यागौ तुम,
आज के जमाने में बस हुक्का बड़ो बात है ॥

तम्बाखू के विषय में लिखा गया यह छन्द हास्य रस प्रधान है।

करुण रस :— करुण रस का स्थायी भाव शोक है। प्रिय वस्तु के नष्ट हो जाने से जो चित्त की व्याकुलता होती है वही शोक कहलाता है। जिसके लिए शोक किया जाता है (शोक) वही आलम्बन होता है। उसकी दाह आदि अवस्था उद्दीपन, देव निन्दा क्रन्दन आदि अनुभाव तथा मोह, व्याधि, विषाद आदि व्यभिचारी भाव होते हैं। यथा इस रचनामें :—

वो उमंग मिटी अपने मनकी,
सब आश छुटी दिल टूट गया।
हमने समझा वह आते हैं,
धोखा तो दिया इन आंखों ने।
फिर मुझको किनारा मिल न सके,
जो हात तुम्हारा छूट गया।

हमने अपना दिल बहलाने,
मिट्टी का बनाया था पुतला ।
जलने वाले नहिं देख सके,
वह आज खिलौना फूट गया ।
जिसको हमने हंसते देखा,
नहिं अश्क कभी थे आंखों में ।
जो छैल कभी मचला था नहिं,
वह आज सभ को रुठ गया ॥

यहाँ आशा छूटने पर दिल के टूटने से उत्पन्न शोक आलम्बन दाह उद्दीपन, दु:ख प्रकट होना अनुभाव तथा विषाद व्याधि आदि व्यभिचारी भाव हैं।

(४) रौद्र रस :— रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। विरोधियों के प्रति जो हृदय में तीक्ष्णता या प्रतिरोध की भावना होती है वही क्रोध कहलाता है। उसका आलम्बन शत्रु होता है। शत्रु की चेष्टाएं तथा युद्ध की ध्वनियां उद्दीपन होती हैं। भुजाओं का फड़कना शस्त्र निक्षेपण, उग्रता, कम्प, मद, रोमाञ्च आदि अनुभाव तथा मोह विमर्ष आदि व्यभिचारी भाव होते हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

चमकी रण चंचल दामिनी सी,
सब बीरन जीवन खोय रही ।
गज काट महा धरनी पटके,
अटके डरते तिन जोय रही ॥
मन 'छैल' सदा शठ पापिन के,
शिर औं तन भुंडन ढोय रही ।
कलि काल कराल हयाल बुऐ,
सखि म्यान भई थक सोय रही ॥

इस छन्द में शत्रु आलम्बन है। युद्ध के लिए चमकती हुई तलवार उद्दीपन। विजय प्राप्ति हेतु भड़कती भुजायें एव चंचल दामिनी सी तलवार अनुभाव तथा कम्प, मद आदि व्यभिचारी भाव है।

वीर रस :— वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है । काय करने में आनन्दपूर्ण स्थिर उद्योग का नाम उत्साह है । विजेतव्य आदि आलम्बन तथा उसकी चेष्टाएँ उद्दीपन, युद्धादि सामग्री अनुभाव, धैर्य मति गर्व आदि व्यभिचारी भाव है । भरतपुर के महाराजा जवाहर सिंह की वीर गाथा में लिखा गया यह छन्द द्रष्टव्य है—

निकस मियान घड़ी एक ना विराम लेत
चपला सो चमक्क शत्रु छाती विदार है ।
विजुली झमक्के नहि सक्के अरिनाशन में,
अश्वमार हातीशर वीरन में पार है ॥
'रसिक छैल' सूजा के सुत हो जवाहर जू,
तेरी सव पैज पूरी राखी करतार है ।
फट्ट-कट्ट मुंडन के झुंड अनगिन्त करे,
अति ही प्रचंड वंड तेरी तरवार है ॥

इस छन्द में शत्रु आलम्बन है । जवाहर सिंह की विजय प्राप्ति की चेष्टायें उद्दीपन, विजली की तरह चमकदार तलवार अनुभाव शौर्य, धैर्य, गर्व आदि व्यभिचारी भाव है ।

(६) भयानक रस :— भयानक रस का स्थायी भाव 'भय' है । किसी भीषण वस्तु के कारण चित्त में जो विकलता हो जाती है वही चित्त वृत्ति 'भय' कहलाती है । जिससे भय उत्पन्न होता है वही इसका आलम्बन, भीषण वस्तु की चेष्टाए उद्दीपन, वैवर्ण्य, गद्गद् स्वर, स्वेद रोमान्च, पलायन आदि अनुभाव तथा शंका, संयम, मरण आदि व्यभिचारी भाव हैं । एक उदाहरण दृष्टव्य है—

शोर नभ मंड कर धाई वहु धारन सों,
भूतल पै आय वल वेग सों सिधाई है ।
'छैल' घर फोरे वन्ध तोरे वहु वीचन में,
वांधी वहु भाँति सव भूले चतुराई है ॥
श्री व्रजेन्द्र भूपति भगीरथ सो आज भयो,
रोकी जल वाढ़ कौन तेरी समताई है ।
पापिन के तारिवे कों दुष्टन विदारिवे कों,
विगड़ी सुधारिवे को गंग चली आई है ॥

इस रचना में जल बाढ़ से भय उत्पन्न हो रहा है अतः यह आलम्बन है। जल बाढ़ का प्रबल वेग उद्दीपन। वेग के कारण उत्पन्न रोमान्च पलायन आदि अनुभाव तथा शंका, संभ्रम, मरण आदि व्यभिचारी भाव हैं।

बीभत्स रस :— बीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा है। किसी घृणास्पद वस्तु के दोष दर्शन से उत्पन्न होने वाला घृणा भाव ही जुगुप्सा कहलाता है। दुर्गंध, मांस, रुधिर इत्यादि इसके आलम्बन हैं। उनमें कीड़े पड़ना आदि उद्दीपन है। थूकना, मुँह फेरना इत्यादि अनुभाव है तथा मोह, व्याधि, मरण आदि व्यभिचारी भाव हैं। कवि 'रसिक छैल' के निम्नलिखित छन्द में बीभत्स रस का आनन्द लिया जा सकता है—

पीरे-पीरे दांतन पै कटि जमी पीरी-पीरी,
पीरी थूकं रेत चिन्ता नेक नहि लाज की।
एक आंख ढेर जामें पानी झरै पीरी-पीरी,
मुख राजधानी राजे माखिन समाज की॥
मैली घाघरी में दिये मैले की सुपीरी छाँय,
पीरी झरैं पीव शोभा नीको अति पाज की।
पतझार समान लट जुओं झरत जाके,
देख साज लाज भई सैन रितुराज की॥

यहाँ अत्यन्त घिनौनी शकल की यह स्त्री आलम्बन है। दांतन पर पीलापन मुख पर मक्खियों का समाज, मैली पीरी घाघरी आदि उद्दीपन हैं। इस घिनौनी स्त्री को देख कर मुँह फेर लेना तथा नाक भौंह सिकोड़ना आदि अनुभाव और व्याधि, आदि व्यभिचारी भाव है।

(८) अद्भुत रस :— अद्भुत रस का स्थायी भाव 'विस्मय' है। विलक्षण वस्तुओं के दर्शन, श्रवण आदि से जो चित्त का एक विकास सा होता है वही विस्मय कहलाता है। इसका आलम्बन विलक्षण वस्तु है। उस वस्तु का गुण-दर्शन ही उद्दीपन है। स्वेद, रोमान्च, नेत्र विकास आदि अनुभाव तथा वितर्क, आवेग, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव हैं।

व्यभिचार भाव है। कवि 'रसिक छैल' भगवान श्रीकृष्ण के उपासक थे। उन्होंने अपने आराध्य देव की अर्चना हेतु अनेक पदों की रचना की है। उदाहरण के लिए निम्न लिखित पद दृष्टव्य है—

दई है छुड़ाय पूजा इन्द्र की अनोखे लाल,
मोले व्रज वासिन सों गिरराज कूँ पुजायो है।
बीन कों बजाय ब्रह्मासुत ने खबर दीनो,
सुनिके संदेसो मन अधिक रिसायो है ॥
'रसिक छैल' लीने बुलाय के प्रलय मेघ,
व्रज कों डुबाओ ऐसो हुकम सुनायो है।
बूढ़त निहारे गाय, गोपी, गोप, ग्वाल-बाल,
हँसि के गोपाल गिरि कर पै उठायो है ॥

इस रचना में गोवर्धन धारी श्रीकृष्ण आलम्बन हैं। अधिक वर्षा उद्दीपन, श्रीकृष्ण की गोवर्धन धारण करने की प्रक्रिया और उनकी प्रसन्न मुद्रा तथा बूढ़ते हुए ग्वाल-बालों का गद्गद होना अश्रु प्रवाहि होना आदि अनुभाव और मति, ईर्ष्या वितर्क आदि व्यभिचारि भाव है। पद में स्थायी भाव गोवर्धनधारी विषयक रति है।

वात्सल्य रस :—साहित्य शास्त्रियों में से अनेक आचार्यों ने वात्सल्य रस को स्वतन्त्र रस के रूप में प्रतिष्ठित किया है। साहित्य दर्पणकार इसमें प्रमुख आचार्य हैं। वात्सल्य रस का स्थायी भाव छोटों के प्रति स्नेह है। छोटे बालक इसके आलम्बन, बालकों की तोतली बोली, सौन्दर्य, क्रीड़ा आदि उद्दीपन और स्नेह से गोद में उठाना आदि अनुभाव तथा आलिंगन, चुम्बन आदि व्यभिचारि भाव हैं। निम्न-लिखित पद में वात्सल्य रस को देखा जा सकता है—

छोटे से मुख से कछू तोतली सी बात कहे,
निकट जो बुलायें तो आप भजे दूरियाँ।
कौतुक नवीने करें मन बोध मोद भरें,
माता पिता कों रहत प्रेम परि पूरियाँ ॥

गीत खण्ड

यह आज निराला है बसन्त

यह आज निराला है बसन्त,
है किया प्रकृति ने क्यूँ बसन्त।

॥ १ ॥

चलती है सर-सर शीत पवन,
हिम-कण से ठंडे हुए भवन।
पतझड़ हुए उद्यान अरु उपवन,
कट-कट बजते हैं आज दन्त।
यह आज निराला है बसन्त,
है किया प्रकृति ने क्यूँ बसन्त॥

॥ २ ॥

उपवन का अब हुआ ह्रास,
बस रहा योजना का विकास।
उल्लास नहीं, मर रहा ख्रास,
जनरव वोटों का है अनन्त।
यह आज निराला है बसन्त,
है किया प्रकृति ने क्यूँ बसन्त।

॥ ३ ॥

अब नहीं कहीं संगीत रहा,
कंपित तन-मन हो भीत रहा।
द्विविधा में जीवन बीत रहा,
श्रीमान दुखी अरु साधु सन्त।
यह आज निराला है बसन्त,
है किया प्रकृति ने क्यूँ बसन्त॥

॥ ४ ॥

अब नहिं रितुराज विकास रहा,
इक करुणा रस का वास रहा।
बस रसिक 'दंल मन मास रहा,
है सुख से दुःख की यह भिडन्त।
यह आज निराला है बसन्त,
है किया प्रकृति ने क्यूँ बसन्त॥

यह आज निराला है बसन्त

यह आज निराला है बसन्त,
है किया प्रकृति ने क्यूँ बसन्त ।

॥ १ ॥

चलती है सर-सर शीत पवन,
हिम-कण से ठंडे हुए भवन ।
पतझड़ हुए उद्यान अरु उपवन,
कट-कट बजते हैं आज दन्त ।
यह आज निराला है बसन्त,
है किया प्रकृति ने क्यूँ बसन्त ॥

॥ २ ॥

उपवन का अब हुआ ह्रास,
बस रहा योजना का विकास ।
उल्लास नहीं, भर रहा त्रास,
जनरव वोटों का है अनन्त ।
यह आज निराला है बसन्त,
है किया प्रकृति ने क्यूँ बसन्त ।

॥ ३ ॥

अब नहीं कहीं संगीत रहा,
कंपित तन-मन हो भीत रहा ।
द्विविधा में जीवन बीत रहा,
श्रीमान दुखी अरु साधु सन्त ।
यह आज निराला है बसन्त,
है किया प्रकृति ने क्यूँ बसन्त ॥

॥ ४ ॥

अब नहिं रितुराज विकास रहा,
इक करुणा रस का वास रहा ।
बस रसिक 'छैल' मन भास रहा,
है सुख से दुःख की यह भिडन्त ।
यह आज निराला है बसन्त,
है किया प्रकृति ने क्यूँ बसन्त ॥

नथ टूट गई झगरे में

॥ १ ॥

मेरे डारो हाथ गरे में,
नथ टूट गई झगरे में।
मथुरा है तनक परे में,
मेरे डारो हाथ गरे में॥

॥ २ ॥

मैं दधि बेचन जात वृन्दावन,
मोते नित अटकें डगरे में।
मोते, नित अटकें डगरे में,
नथ टूट गई झगरे में॥

॥ ३ ॥

बैंया मोरी पकड़ी,
चोली मेरी झटकी।
मोय ले गयो तनक परे में,
नथ टूट गई झगरे में॥

॥ ४ ॥

दधि मेरो खाय,
मटुकिया मेरी फोरी।
जाके टुकड़ा पड़े नरे में,
नथ टूट गई झगरे में॥

॥ ५ ॥

हौं ब्रज पति मत चाल चलावें,
मत चूकें नमक जाने में।
नथ टूट गई झगरे में,
मेरे डारो हाथ गरे में॥

बलम मोरे लग जइ हैं।

मत मारें नजरिया के बान,
बलम मोरे लग जइ हैं।
॥ १ ॥
बड़े - बड़े कजरारे प्यारे,
इनकी अनोखी पान।
बलम मोरे लग जइ हैं॥
॥ २ ॥
पलपल पलक पेंतरा पलटत,
भौंहें बनी हैं कमान।
बलम मोरे लग जइ हैं॥
॥ ३ ॥
झुक झूमें जो में अर जइ हैं,
ये सब गुन की खान।
बलम मोरे लग जइ हैं॥
॥ ४ ॥
'छैल' छिपे घूंघट के पर माँ,
करि हों चोट महान।
बलम मोरे लग जइ हैं॥
मत मारे नजरिया के बान।
बलम मोरे लग जइ हैं॥

— ० —

चली रे गाँव की छोरी

इक पनिआँ भरन को चुपके-चुपके,
चली रे गाँव की छोरी।
गोरी - चली रे गाँव की छोरी॥

करे मीठी - मीठी बात,
जा की सुन्दर सी गात।
और सूरत भोरी - भोरी,
गोरी - चली रे गाँव की छोरी॥

आई बरसात,
कैसी अँधेरी रात,
जिया घबरात,
कब होगा ये परभात।
करे बतिआ रसीली,
और चाल है रंगीली।
जासों मिल गई गोरी - गोरी,
गोरी - चली रे गाँव की छोरी।

धूप मेंह नहाये,
फूल हँस बलखाये,
मेरे जिया को लुभाये,
मन मदन डुलाये।
जा की सुन्दर सूरत,
जैसे बादल की धूप,
डारि मोहिनी अनूप,
मानों बढ़ने को रूप।

मन छीन लिओ वर जोरी,
गोरी - चली रे गांव की छोरी ॥
नींद नहीं अब आवें,
विरहा वदन जरावें।
'छैल' छिटक रही चन्द्र - चांदनी,
आजा चोरी — चोरी ॥
गोरी — चली रे गांव की छोरी ॥
इक पनिआं भरन को चुपके - चुपके,
चली रे गांव की छोरी।
गोरी - चली रे गांव की छोरी ॥

—:o:—

मैं काम सभी के आती हूँ

मुझसे करते जन प्रेम सदा,
मैं काम सभी के आती हूं।

॥ १ ॥

जिसके दिल में जब चाह हुई,
वह ढूंढ़ मुझे ले आते हैं।
फिर डाल प्रेम की एक नजर,
मीठा - मीठा सहलाते हैं॥
उस ऊँगली की सहलाहट से,
मैं गरम तुरत हो जाती हूं।
मुझसे करते जन प्रेम सदा,
मैं काम सभी के आती हूं॥

॥ २ ॥

मेरा है उज्ज्वल श्वेत रूप,
उत्तेजित जब हो जाती हूं।
अधरों से उनके चिपट - चिपट
मैं उनकी प्यास बुझाती हूं॥
घर में बाहर उद्यानों में,
हर जगह साथ में जाती हूं।
मुझसे करते जन प्रेम सदा,
मैं काम सभी के आती हूं॥

॥ ३ ॥

मैं एक ओर वे जन अनेक,
पर तृप्त सभी हो जाते हैं।
करके मेरा सब अंग संग,
वह अपना प्रणय जताते हैं॥
ठण्डी होने पर 'ढेल' फेंक देते,
सिगरेट में कहाती हूं।
मुझसे करते जन प्रेम सदा,
मैं काम सभी के आती हूं॥

—:o:—

गजल

हमने आँखों में तुझे,
मुंह न अब हमसे छुपा,
नूरे खुदा देख लिया ॥
चैन दमभर भी नहीं,
इश्क़ में हमने तड़फने का,
मजा देख लिया ॥
दिल के आइने में,
हम सूरते तस्वीर तेरी।
आँख जब बन्द हुई,
हुस्न तेरा देख लिया ॥
यह तो घर छंत तेरा,
इसमें मुहब्बत तेरी।
दिल में अब कोई नहीं,
तेरे सिवा देख लिया ॥
क्या वफा की कोई,
उम्मीद करे जाने जहाँ।
बेवफा हमने जू की,
हम पे जफा देख लिया ॥

—:o:—

मैं किससे क्या पहिचान करूँ

अपना पथ है दो ही छण का,
मैं किससे क्या पहचान करूँ।

॥ १ ॥

जिनसे मेरा कुछ काम नहीं,
वे काम पूछते हैं मेरा।
जिनको नहीं अपना नाम याद,
वे नाम पूछते हैं मेरा॥
फिर उनको परिचय देकर के,
क्यों परिचय का अपमान करूँ।
अपना पथ है दो ही क्षण का,
मैं किससे क्या पहिचान करूँ॥

॥ २ ॥

इस जीवन में हँसते - हँसते,
आते देखे आने वाले।
अरु रोने का निष्कर्ष लिये,
जाते देखे जाने वाले॥
फिर किस पग ध्वनि से बच निकलूँ,
किस पग ध्वनि का सम्मान करूँ।
अपना पथ है दो ही क्षण का,
मैं किससे क्या पहचान करूँ॥

॥ ३ ॥

जिस जीवन में साहित्य नहीं,
उस जीवन ने क्या चक्खा है।
जिस जीवन में कुछ राग नहीं,
उस जीवन में क्या रक्खा है॥
फिर ऐसे नीरस जीवन पर,
मैं क्यों मन में अभिमान करूँ।
अपना पथ है दो ही क्षण का,
मैं किससे क्या पहचान करूँ॥

॥ ४ ॥

इच्छा है यही प्रभु से है विनय,
जब अन्त समय मेरा आये।
कवि वृन्द खड़ा कुछ कहता हो,
अरु शान्ति चहुँ दिशि छा जाये॥
हो गुंजित स्वर मे 'छैल' भुवन
ऐसे में, मैं प्रस्थान करूँ।
अपना पथ है दो ही क्षण का,
मैं किससे क्या पहचान करूँ॥

—:o:—

चीर हरण लीला

॥ दोहा ॥

जय श्री राधाकृष्ण की कर सप्रेम स्वीकार।
चीर हरण लीला लिखूं अपनी मति अनुसार ॥१॥

कातिक पर्व विचार हिय वेद रीति अनुसार।
प्रातः समय मज्जन करन चलीं सकल ब्रजनार ॥२॥

॥ घनाक्षरी ॥

भूषण सुवस्त्र सर्व साज अरचा के सज,
कलश सुवर्ण शीश धारती सुहाती हैं।
कन्द फल मूल गंध धूप दीप अक्षत ले,
भर-भर थार मोद मन में मनाती हैं॥
वाटिक बनें हो वा विलोकत रसिक छैल,
देख-देख रूप देव बाला सरमाती हैं।
टोली रसघोली मिल करती ठठोली चलीं,
गाती औं बजातीं हरषातीं मदमाती हैं ॥३॥

॥ दोहा ॥

सुरुचि सुलोचनि साज शुचि भूषन वसन शरीर।
यहि विधि विविध सुविधुमुखी पहुंची जमुना तीर ॥४॥

॥ वार्ता ॥

इतकूं घट-घट वासी श्री कृष्ण चन्द्र प्रथमहि तहां कदम्ब की डारन में जाय कें लीला करवे के हेतु दुरि गये।

॥ दोहा ॥

प्रात होत आयौ प्रथम प्रिय चंचल चित चोर।
रसिक छैल छलिया सुघर ब्रज में नन्द किशोर ॥५॥

कान्ह कालिन्दी कूल में ललित कदम्ब निहार।
दुबकि दुर्यौ द्रुत डारन में लीला ललित विचार ॥६॥

॥ वार्ता ॥

इतकूं सगरी सखी पर्व न्हैवे के हेतु
श्री जमुनाजी के तट पै जाय पहुंची।

॥ दोहा ॥

पुनि घट इन घाटन धरे निज पर लिए उतार।
जमुना तट पैठन लगीं श्याम नाम घट धार ॥७॥

॥ वार्ता ॥

सखीन को जल क्रीड़ा को वर्णन।

॥ सवैया ॥

दाय लहैं यह्न भांतन भांत कहूं इक एकन अंक भरें हैं।
तैरहिं एकन की गति एक कहूं दबि जाय कहूं उघरें हैं॥
तोयद सों गिरि तोय परीं कहि "छैल" मनों घनिदा छहरें हैं।
केलि करें जमुना जल मांहि मनों रति रूप अनन्त धरें हैं ॥८॥

॥ वार्ता ॥

श्रीकृष्ण चन्द्र को सखीन कूं क्रीड़ा मगन देख चोरी करिबे
कदम तें उतरि बो।

॥ दोहा ॥

देख तिन्हहिं क्रीड़ा मगन मन मोहन मुसकाय।
उतर कदम तरु तें चल्यो चतुर चोर अतुराय ॥९॥

॥ वार्ता ॥

श्रीकृष्ण को चोर को नाट्य करते जायबो और चोर चोर बो।

॥ मोतीदाम ॥

कहूं उझकैं झिझकैं झुक जाय,
कहूं चमकैं चहुंकैं चकरा।
कहूं दमकैं द्रुत ह्वै दब जाय,
कहूं ठिठकैं ठुमकैं ठंहरा।

कहूं सकुचैं सरमैं सैहराय,
कहूं सुघरीक घरी घवराय।
कहूं छल छद्म करें छिप जाय,
यही विधि सों पहुंच्यो तंह जाय॥
धरे जंह गोपिन चीर सुलाय,
यथा विधि सों भलि भांति लगाय।
सुई इक एकन के अपनाय,
लिए सव के सव चीर चुराय॥१०॥

॥ दोहा ॥

चीर चीर चट चल दिये, चहुं चितवन चतुराय।
चढ़ तरु पट लटका दिये झट डारन यदुराय॥११॥

॥ वार्ता ॥

चीरन के लटकाय दिये ते कदम की शोभा।

॥ घनाक्षरी ॥

केतकीय कुन्द कचनारन कमल कोर,
किंशुक कनेर कमनीय भुक झुली हैं।
सौंन जुही सेवती निवारी चंप सोसनी,
सु गेंदा गुलदावरी गुलाव सी अतूली हैं।
उपमा वखानत वनैं न तिहि औसर की,
छैल की कहे को कवि शेष मति भूली है।
ऐसी चहूं ओरन सजी हैं चारु चीरन सों,
मानौं रंग रंगन कदम्ब डार फूली है॥१२॥

॥ वार्ता ॥

स्नान पश्चात् वस्त्र नहि पायवेते गोपिन की दशा।

॥ कुंडलिया ॥

जब सब मज्जन कर चुकीं नवल नार सुकुमार।
इत उत तट हेरन लगीं जँह पट धरे उतार॥
जँह पट धरे उतार एक नहिं दीखे सारो।
अकचकाय घबराय सकुच मन भई दुखारी॥
"रसिक छैल" कर सोच परस्पर भाषहिं यों तब।
अब घर उत्तर देहि कौन पूछहि गुरजन जब॥१३॥

॥ वार्ता ॥

तिनहूँ घबराईं देख कें श्री कृष्ण को हँस्यो और उनको चीन्ह्यो।

॥ सोरठा ॥

कौतुक देख नवीन, मन मोहन हंसिये लगे।
नटखट नटवर चीन्ह पुनि जल में पैठ न लगीं॥१४॥

॥ वार्ता ॥

गोपिन को श्रीकृष्ण कूँ फटकारबो।

॥ घनाक्षरी ॥

कैसी बान आन कें परी है ये हटीले कान्ह,
नित्य नये ऊधम करो हो सखियान सों।
घट पटको औ अटको हो घाट बाटन में,
अटको नां हटके पिजाओ बतियान सों॥
भोरी ब्रजनारी व्यर्थ छेड़त "रसिक छैल"
इन्हें न सताओ यों अनोखो पतियान सों।
चोर-चोर लीन्हें चीर तीर जमुना के हाय,
कैसी अनरीत नग्न देखो अँखियान सों॥१५॥

॥ वार्ता ॥

गोपियों के ऐसे कहाये पै श्रीकृष्ण को युक्ति।

॥ दोहा ॥

इमि बहु विधि माँगन लगीं विहँस कही यदुवीर।
कदम कली विकसी अली नाँहि तुम्हारे चीर ॥१६॥

॥ वार्ता ॥

सखीन को श्रीकृष्ण के प्रति उत्तर।

॥ दोहा ॥

लाल बनावत व्यर्थ हो ये बतियां बिन ढंग।
कतहुं न जग फूलत सुनीं कदम डार बहु रंग ॥१७॥
औरहु तरु ते कदम इमि किमि न रंगे लहरात।
ये तौ प्रति डारन परे पट हमरे दरसात ॥१८॥

॥ घनाक्षरी ॥

वेद औ पुरान शास्त्र नीत न अनीत करौ,
कैसी रीत नारिन दै भीत चमकावौ हो।
मानत नहीं हो कछु जानत नहीं हो हाय,
मात जसुधा के व्यर्थ दूधहि लजावौ हो॥
ऐसे कर छंद छल छद्मन "रसिक छैल"
निपट निलज्ज नाम नन्द को धरावौ हो।
ऐहो कान्ह कान दै सुनों ये अबलान बात,
काहे कुलकान लोक-लोक की नसावौ हो ॥१९॥

॥ वार्ता ॥

गोपिन के खीजबे पै कृष्ण को मुस्कानो।

॥ दोहा ॥

इमि जब सब खीजन लगीं कहि रहि गईं थकाय।
कहन लगे मधुरे बचन तब मोहन मुसकाय ॥२०॥

॥ सवैया ॥

और कछू कहनं सु कहो तुमरी सिगरी चुप साध सहूंगी।
सुन्दर आनन सों निकसी मधुरी धुनि गारिन सों न दहूंगी ॥
'छैल' छलो कहतीं सु सही इन चोजनी बातन में न बहूंगी।
फेर यही करनो परि है अब जो कछू हौं समझाय कहूंगी ॥२१॥

॥ वार्ता ॥

सखीन के प्रति श्रीकृष्ण को आज्ञा।

॥ सवैया ॥

किमि कांपत शीत सखी सिगरी नहिं लाभ लहौं इतनी हटतें।
अरु एकई एक करो विनती मत वेर करो गहिये झटतें ॥
कहि "छैल" न काज बनै झगरे दुःख लाज तजौ अपने घटतें।
हमसें अपने पट लेन चहो कर जोर कढ़ो जमुना तट तें ॥
॥२२॥

॥ वार्ता ॥

सखीन को उत्तर।

॥ दोहा ॥

इमि हम किमि जलतें कढ़ें कहु व्रजपति चितचोर।
झट हमरे पर दीजिये विनवहिं सब कर जोर ॥२३॥

॥ वार्ता ॥

गोपीन कूं कृष्ण की सान्त्वना।

॥ दोहा ॥

नगिन धंसी जमुना सलिल वरुण वास बड़ दोष।
ताहि निवारन अस करी करहु न हम पर रोष ॥२४॥

॥ वार्ता ॥

श्री कृष्ण की आज्ञानुसार सब सखियों को जल तें निकार कैं वस्त्र लेयो।

॥ मोतीदाम ॥

चलीं जल तें सिगरी सरमात,
कछू मुख मोर कछू हरषात।
किती धर आंखन ऊपर हात,
किती कुच बाहन बीच कुपात॥
किती नहि ऊपर शीश उठात,
किती घन केशन अंग दुरात।
किती निकसीं तट पैं अंगरात,
किती नव नैंननतीर बहात॥
गुपाल तबैं हँस तीर बुलात,
सनेह सने शुचि वैंन सुनात।
कदम्ब तनैं चल जोरत हात,
अनंग भरी निज वस्त्रन पात ॥२५॥

॥ दोहा ॥

लैं पट झटतिन इक लिये सुगठित सुघर शरीर।
घट भर तटतैं चल दई पहुँचीं मोहन तीर॥२६॥
प्रेम नीर नैंनन भरैं बोलीं मृदु मुस्कात।
कृपया निज दासी करहु विरहा बदन जरात॥२७॥

॥ वार्ता ॥

गोपिन की विनय सुनकें कृष्ण की आज्ञा।

॥ दोहा ॥

सुनि इमि गोपिन की विनय विहँस कही घनश्याम।
बंसीवट बन रास रचि लीला करहि ललाम॥२८॥
तिहि निशि तुम्हहि बुलाय हैं बसिया मधुर बजाय।
तबलौं हिय धीरज धरौ सबन्ह कही समुझाय॥२९॥
सुनत श्याम सुन्दर बचन मधुरे सहन सुनाय।
तब जमुना तट तें अलीं चलीं गृहन हरषाय॥३०॥

॥ वार्ता ॥

शरद की पूर्णिमा पर रास लीला।

॥ सवैया ॥

करके सुधिया उन गोपिन को बसिया कर धार बजाय दई।
सब मोह लिए नर-नार चराचर शीतल पौन बहाय दई॥
रितुराज विना विकसीं कलियां रतिराजहु तीर चलाय दई।
नहिं भेद लख्यो किनहूं जग में दिन तीसहु रात बनाय दई॥३१॥

॥ दोहा ॥

बंसीवट की कुंज में लीला करी सुजान।
चन्द छुप्यो नहिं रैन बढ़ पूरी मास प्रमान॥३२॥
इमि लीला पूरी करी जिमि लिख सक्यो सम्हार।
गुणिजन गहि लीजों गुणन देहु दोष परिहार॥३३॥
नहिं विद्या बल बुद्धि नहिं जानत कविता सार।
"रसिक छैल" हिय एक बल कृष्ण नाम आधार॥३४॥
हिय इच्छा मन एक है नटवर नन्द किशोर।
राधे संग विहरो सदा नित मन मन्दिर मोर॥३५॥

॥ इति श्री चीरहरण लीला ॥

---:o:---

है जीवन इक भार

है जीवन इक भार, ढो रहा मैं इसको हँसते हँसते।

॥ १ ॥

उठा ववंडर समय चक्र का,
हृदय बीच तूफान बढ़ा।
दूषित वायु कलह धूरि ले,
धीरे - धीरे गगन चढ़ा॥
फिर मेरी वह सुखद शान्ति,
सब नष्ट हुई फँसते - फँसते।
है जीवन इक भार,
ढो रहा मैं इसको हँसते-हँसते॥

॥ २ ॥

अपनी कंटक पूर्ण महा,
पग-पग पर विषधर सर्प पड़े।
घिर रही राह तस्कर दल से,
अनगिनत दस्यु चहुँ ओर खड़े॥
तन शक्ति का हुआ ह्रास,
नहिं चला जाय रस्ते-रस्ते।
है जीवन इक भार,
ढो रहा मैं इसको हँसते-हँसते॥

॥ ३ ॥

चुन-चुन करके तिनके मैंने,
नीड़ बनाया था अपना।
गाऊँगा बस प्रेम राग,
अरु देखूँगा मीठा सपना॥
गिरि गाज जल गयी डालें,
अरु आग लगी बसते-बसते।
है जीवन एक भार,
ढो रहा मैं इसको हँसते-हँसते॥

॥ ४ ॥

रहा बाल सब किया प्यार,
पुनि यौवन में सब भूल गया।
नई उमंगें उठी 'छैल'
मण्डूक कूप का फूल गया॥
हुआ वृद्ध तन उठा शूल,
बल बीत गया नसते-नसते।
है जीवन इक भार,
ढो रहा मैं इसको हँसते-हँसते॥

—:o:—

पास आकर के तुम्हारे क्या करूँगा

पास आकर के तुम्हारे क्या करूँगा।
प्रेम सिंचित गीत गाकर क्या करूँगा॥

॥ १ ॥

अंक में तुम थे तो मुझसे दूर था मैं।
थे बने आकाश तुम अरु था विहंग मैं॥

है बड़ी दुर्धर समस्या, प्रेम अब भी,
उस लगन को अब जता कर क्या करूँगा।
पास आकर के तुम्हारे क्या करूँगा॥

॥ २ ॥

भक्त बन कर कर रहा आराधना तेरी।
पूर्ण तुम हो फिर भी याचक वृत्ति मेरी॥

है मिला सर्वस्व तुमसे अब उसे ले,
भेंट तुमको ही चढ़ा कर क्या करूँगा?
पास आकर के तुम्हारे क्या करूँगा?

॥ ३ ॥

ग्रीष्म की मैं धूप, और तुम दामिनी हो।
मैं तड़फती आह, अरु तुम रागिनी हो॥

भेद इतना है फिर तुम बताओ,
संगिनी अपनी बनाकर क्या करूँगा?

पास आकर के तुम्हारे क्या करूँगा?
प्रेम सिंचित गीत गाकर क्या करूँगा?

—:o:—

'मैं' भूल हरि का नाम ले

ले जान तू निज रूप को – मैं भूल हरि का नाम ले

॥ १ ॥

मैं-मैं अजा ने जब कहा,
मृत्यु का दुःख उसने सहा।
फिर कट गया उसका गला,
ले माँस को कोई चला॥
ढाँचा बिखर उसका गया,
धुनियाँ चला फिर चाम ले।
ले जान तू निज रूप को,
मैं भूल हरि का नाम ले॥

॥ २ ॥

लेकर छुरी फिर हाथ में,
सब चाम की धज्जी उड़ा दी।
छील करके बाल सबकी,
गाड़ मिट्टी में सड़ा दी॥
'छैल' बल देने लगा वह,
छोड़ दे, फिर थाम ले।
ले जान तू निज रूप को,
मैं भूल हरि का नाम ले॥

॥ ३ ॥

जब तांत बन कर चढ़ गई,
वह काम में आने लगी।
हर चोट में आवाज बस,
फिर तू हि तू गाने लगी॥
उपदेश इससे ग्रहण कर,
निज बुद्धि से कुछ काम ले।
ले जान तू निज रूप को,
मैं भूल हरि का नाम ले॥

—:o:—

सजनी जियरा जले

॥ १ ॥

यह ऋतु बसंत लहराये,
मेरा पिया पास नहीं आये।
सजनी जियरा जले॥

॥ २ ॥

फूले फूल चहूँ दिशि बन में।
उठतीं नई तरंगें तन में॥
सुन-सुन कर ये नये तराने,
मन मेरा मचले।
सजनी जियरा जले॥

॥ ३ ॥

भूल गये सब पिछली बातें।
सुखद मिलन अरु चांदनी रातें॥
भांति-भांति के प्रणय मिलन वो,
किंशुक वृक्ष तले।
सजनी जियरा जले॥

॥ ४ ॥

यह ऋतु राज महा दुःखदाई।
पिय की पाती तक नहिं आई॥
छोड़ गये मोय किसके सहारे,
कबके लिए बदले।
सजनी जियरा जले॥

॥ ५ ॥

छल लौट गृह जल्दी आवो।
तन-मन की सब लगी बुझाओ॥
फिर पछतावो अवसर खोये,
यौवन जात ढले।
सजनी जियरा जले॥

"दो एक हुए हँसते-हँसते,
जीवन में मीठी प्यास लिये"

॥ १ ॥

जो नेह आज बुंद-बुंद सावन,
तूफान हृदय में था लाया।
अरु कुसुमित पल्लव डाली सा,
था मन ही मन में मुसकाया॥
सोती बेला सपने आये,
रजनी का अमिल हास लिए।
दो एक हुए हँसते-हँसते,
जीवन में मीठी प्यास लिए॥

॥ २ ॥

थीं नई उमंगें हृदय बीच,
तन पुलकित होता आता था।
रजनी थी नीरव अति सुन्दर,
जग सारा सोता जाता था॥
थी शुभ्र चन्द्रिका फैल रही,
चलती थी पवन सुवास लिए।
दो एक हुए हँसते-हँसते,
जीवन में मीठी प्यास लिए॥

॥ ३ ॥

थे नयन उलझते नयनों से,
कुछ मुसकाते कुछ सकुचाते।
थे बाँह लिपटती बाँहों से,
कुछ इठलाते कुछ अलसाते॥
सब अधर ढूंढते अधरामृत,
हो निर्भय सरस मिठास लिए।
दो एक हुए हँसते-हँसते,
जीवन में मीठी प्यास लिए॥

॥ ८ ॥

जब भुवन भास्कर की अरुणाई,
फैल गई नभ मण्डल में।
वन में नभचर कलरव करते,
अरु चक्रवाक चहके जल में॥
तब 'छैल' विदा माँगी दोनों,
मन पुनर्मिलन की आशा लिए।
दो एक हुए हँसते-हँसते
जीवन में मीठी प्यास लिए॥

—:o:—

इस दुनियाँ का हाल सुनाऊँ

इस दुनियाँ का हाल सुनाऊँ आज जगत है खोटा।
अपनी-अपनी सबको पड़ रही, सभी बतावें टोटा॥

साहूकार शहर में देखे बेचें सोना गोटा।
रुपया कमावें बेईमानी से येहू बतावें टोटा॥

देखे बनिया सभी शहर के माल बेचते खोटा।
गवरमेंट का टैक्स चुराते ये हू बतावें टोटा॥

सभी किसान बड़े खुशहाली बाँधें नाज भरोटा।
आठ-आठ ज्वारे की खेती ये हू बतावें टोटा॥

सगे बगीची नशेबाज सब चलें भंग पै घोटा।
मस्त रहें और छकें मलाई, ये हू बतावें टोटा॥

बड़े-बड़े ऑफीसर देखे खामें घी सों रोटा।
रिश्वत से अपना घर भरते, ये हू बतावें टोटा॥

देखे भीख माँगते साधू लिए हाथ में लोटा।
बीच गुदरिया नोट छिपावें ये हू बतावें टोटा॥

बड़े-बड़े नेता भी देखे खद्दर पहनें मोटा।
मिलै न बेतन काम चलै सब, ये हू बतावें टोटा॥

पत्नी को हमने समझाया क्यों करती दिल छोटा।
रोकर बोली काम चलै नहिं बड़ा बुरा है टोटा॥

कहा मुझे भी अन धन दे तुम पकड़ कृष्ण का झोटा।
बड़े दुःखी से बोले भगवन, पड़ा स्वर्ग में टोटा॥

देखा हिन्दुस्थान "छैल" ने क्या छोटा क्या मोटा।
एक ही व्याधा मिली जगत में जँह देखा तँह टोटा॥

लै सन्यास चलो जंगल को उठा हाथ में सोटा।
बाँध लँगोटा ले लो लोटा तभी मिटैगा टोटा॥

—:o:—

उमंग मिटी-दिल टूट गया

वो उमंग मिटी अपने मन की,
सब आस छुटी दिल टूट गया।
हमने समझा वह आते हैं,
धोखा तो दिया इन आँखों ने।
फिर मुझको किनारा मिल न सके,
जो हाथ तुम्हारा छूट गया॥
हमने अपना दिल बहलाने,
मिट्टी का बनाया था पुतला॥
जलने वाले नहिं देख सके,
वह आज खिलौना फूट गया॥
जिसको हमने हँसते देखा,
नहिं अटक कभी ये आँखों में।
जो 'छैल' कभी मचला था नहिं,
वह आज सदा को रूठ गया॥

—:o:—

ग्रीष्म ऋतु

ग्रीष्म रितु के प्रबल झोंके,
तन जलाते वह्नि होके।
॥ १ ॥
गगन धूमिल धूरि से है,
धूरि नभ में जल रही है।
सूर्य का सहयोग पाकर,
ताप प्रति पल बढ़ रही है॥
दृष्टि बादल है न आते,
जो प्रबल उत्ताप रोके।
ग्रीष्म रितु के प्रबल झोंके,
तन जलाते वह्नि होके॥
॥ २ ॥
जल गये हैं जल जलज सब,
और जलचर मर चुके हैं।
पंक सूखो हैं दरारें।
भूमि कण तक फट चुके हैं॥
हैं विकल जितने चराचर,
वृक्ष सूखे हैं वनों के।
ग्रीष्म रितु के प्रबल झोंके,
तन जलाते वह्नि होके॥
॥ ३ ॥
आश है पर कुछ समय में,
एक परिवर्तन जगेगा।
श्याम बादल बिजलियों से,
गगन फिर से सज उठेगा॥
शीतवायु मेघ धारा,
प्राण देंगे ताप धोके।
ग्रीष्म ऋतु के प्रबल झोंके,
तन जलाते वह्नि होके॥

॥ ४ ॥

वृक्ष वेली हरी होंगी,
फिर वड़ा आनन्द होगा।
पक्षियों के प्रेम रव से,
वाटिकाएं भरी होंगी॥
छैल जीवन सुवह होगी,
दुःखमयी इक रात सोके।
ग्रीष्म ऋतु के प्रवल झोके,
तन जलाते वह्नि होके॥

—:o:—

होरी

कैसी आज मची ब्रज होरी,
मेरी गागर मग में फोरी।
करते कान नहीं गुरजन की,
ऊधम करते हैं चहुँ ओरी॥
डोल रहे हैं सब मदमाते, गाते धुन पर गारीं।
तीखे नयनों में क्या टोना है, जो बिंधिया ही जाएँ॥
हँसते करकें नई ठठोरी,
घेरें चुन-चुन कर सब गोरी।
फेंके रंग चुनर तर कीनी,
करते हैं नयनों बरजोरी॥
कैसी आज मची ब्रज होरी॥
एक पिये हैं भंग संग में, बहुत अबीर उड़ाते।
नैन भये रतनारे जिनके, जोबन में मदमाते॥
मग में दुबकें चोरी-चोरी,
मारी एक बनी और भोरी।
हैं पिचकारी सबके कर में,
कीनी सब रंग की सरबोरी॥
कैसी आज मची ब्रज होरी
इत सों निकसी कुँवरि राधिका, [illegible]।
उत सों आये कुँवर कन्हैया, [illegible]।
इन ने कर में लीनी झोरी,
[illegible]।
दौरे छैल छिपट गए मग में,
[illegible]
कैसी आज मची ब्रज होरी

॥ ४ ॥

वृक्ष बेली हरी होंगी,
फिर बड़ा आनन्द होगा।
पक्षियों के प्रेम रव से,
वाटिकाएँ भरी होंगी॥
छैल जीवन सुबह होगी,
दुःखनदी इक रात सोके।
ग्रीष्म ऋतु के प्रबल झोके,
तन जलाते वह्नि होके॥

—:o:—

ताज महल

॥ १ ॥

उपमा से तेरी आदर पाते हैं, इस जग के ताजमहल ।
तुझसे अब भी शरमाते हैं, दुनियाँ भर के सब राजमहल ॥
तुझको बनवाकर अमर हुई है, महारानी मुमताज महल ।
मर मर की उज्जवल रूप राशि, इक्कीस वर्ष के श्रम के फल ॥
निश्चल, निर्मल, गम्भीर सजल, ऐ ! सकल विश्व के कौतुहल ।
ऐ ! महलों के सरताज महल, ऐ ! यमुना तल के ताजमहल ॥

॥ २ ॥

तुझको अब तक तो पा न सके, रंगीन विश्व के रंग महल ।
तुझको अब तक ढा न सके, बिजली आँधी तूफान प्रबल ॥
दुनियाँ की कोई चत्र नहीं, जिस पर हो इतनी चहल पहल ।
तू राग मूर्ति वैराग्य मूर्ति, अनुराग मूर्ति दृढ़ मौन अटल ॥
निर्भीक श्वेत प्रतिबिम्ब लिए, नीचे बहता है श्यामल जल ।
ऐ ! महलों के सरताज महल, ऐ ! यमुना तट के ताजमहल ॥

॥ ३ ॥

सौ बार पूर्णिमा को जाकर, मैंने देखा है दृश्य विमल ।
मदमाते युवती और युवक, आते हैं करने जन्म सफल ॥
हो जाता है कुछ जादू सा, उठती है कुछ ऐसी हलचल ।
प्रत्येक युवक है शाहजहाँ, हर युवती है मुमताज महल ॥
यह दृश्य देखने को अवसर, यमुना हो उठती है चंचल ।
ऐ ! महलों के सरताज महल, ऐ ! यमुना तल के ताज महल ॥

॥ ४ ॥

मैं भूल गया शशि की सुषमा, मैं भूल गया जगमग भू तल ।
मैं देख रहा था खड़ा खड़ा, बस ताजमहल हो ताजमहल ॥
मैं सोच रहा था खोया सा, मन में थी कितनी उथल पुथल ।
आखिर था कैसा शाहजहाँ, कैसी थी वह मुमताज महल ॥
यह भी तो एक जमाना था, जब थे भारत सम्राट मुगल ।
जिनकी इच्छा साकार हुई, है बनकर सुन्दर ताजमहल ॥

॥ ५ ॥

सन्ध्या के और सवेरे के, शरमीले चमकीले बादल।
ऊषा के औ गोधूलि के, लालिमा युक्त पीले बादल॥
मीनारों पर आ जाते हैं, हल्के, गोरे, नीले, बादल।
छविमान व्योम के रंग भरे, गर्वीले, भड़कीले बादल॥
बिम्बित प्रतिबिम्बित होता है, वहु रंगों से भरभर उज्ज्वल।
तब स्वप्न लोक से भी सुन्दर, सज जाता है ये ताजमहल॥

॥ ६ ॥

पश्चिम में आग लगी थी, अथवा कोटि-कोटि दीपक जल-जल।
अनुराग भरी इस सन्ध्या का, दमकाते थे सुन्दर आँचल॥
फिर श्वेत कपोलों से आगे बढ़कर पीले बादल।
मन चली प्रकृति के वक्षः स्थल से, मिला कला का वक्षःस्थल॥
रजनी की मधुर प्रतीक्षा में, जब चहक उठा विहंगों का दल।
गो धूलि के आलिंगन में, सो गया सुनहरा ताजमहल॥

॥ ७ ॥

इसके उपवन में खिलते हैं, छूकर मदमाती मलियानल।
गेंदा, जूही, केतिकी, सुमन बेला, गुलाब नरगिस चंचल॥
जब कूक लगाती है कोयल, संगीत सुनाती है बुलबुल।
वे सुध होकर नर्तन करता है, आकर जब भौंरों का दल॥
मंडराते हैं फूलों पर अलि, बजती है गुञ्जन की पायल।
तब तो बन जाता है महफिल, मधुरितु में मोहक ताजमहल॥

॥ ८ ॥

मैं अभी खड़ा था वहीं कहीं, इतने में घिर आये बादल।
बन में उपवन में फैलगई, बूँदों के नर्तन की हलचल॥
जैसे गहरी निश्वासों से, उठता गिरता है वक्षःस्थल।
बस इसी तरह इस वर्षा में, उठता गिरता था यमुना जल॥
मैला कुल मैला और हो गया, तब सरिता का श्याम सलिल।
पर श्वेत और भी श्वेत हो गया, धुल कर सुन्दर ताजमहल॥

॥ ९ ॥

दिन निकला मेरे सम्मुख था, जब एक दिवस यह ताजमहल।
ऊषा ने अपनी रंगीनी से, डाला उसका रंग बदल॥
हँस पड़ा प्रातः जग पड़ा विश्व, किलकार उठा विहंगों का दल।
सोकर न उठा पर शाहजहाँ, सोकर न उठी मुमताज महल॥
कवि का आखिर दिल ही कितना, बस बरस पड़ा आँखों से जल।
मैंने देखा भावुकता पर, मेरी हँसता था ताजमहल॥

॥ १० ॥

गुम्बद के नीचे खड़े हुए, मैंने सोचा जीवन निष्फल।
एक आह निकल कर गूँज उठी, जीवन निष्फल, जीवन निष्फल॥
अब किसका है ये जहाँ कि इससे, शाहजहाँ जब गया निकल।
और किसका है ये महल आज, जब नहीं रही मुमताज महल॥
जग की नश्वरता पर मेरे हो गये उसी क्षण नयन सजल।
लेकिन अमरत्व लिए स्तर ऊँचा, किये खड़ा था ताजमहल॥

॥ ११ ॥

हँसने वालो ये मत भूलो, गिनती के हैं जीवन के पल।
हँसते फिरते हो तुम जैसे, यह भी हँसते फिरते थे कल॥
चिर मुद्रा में यह मग्न आज, तुमको भी सो जाना है कल।
यह सत्य विश्व का मौन खड़ा, बतलाता है ये ताज महल॥
सपने सी बुनियादों पर है, इस अचिर विश्व के क्रम की कल।
मुमताज महल के सपनों में था, एक दिवस ये ताजमहल॥

॥ १२ ॥

जिस शाहजहाँ की भृकुटी से, जाता था यह संसार दहल।
उसने कैदी बनकर काटे, अपने जीवन के अन्तिम पल॥
जिसके शासन में बहती थी, गंगा, यमुना, झेलम, चंचल।
वह एक अन्धेरे कारागृह में, तड़फ गया पीने को जल॥
कैसे कोई विश्वास करे, यह भाग्य चक्र इतना चंचल।
बन्दी गृह में सड़ जायेगा, बनवाने वाला ताजमहल॥

॥ १३ ॥

था जहाँ बना एक मजरालया, था जहाँ एक दिन रंगमहल।
उस जगह आज कुछ भग्न शेष, अथवा सूना निर्जन जंगल॥
मरु उपवन में गिर सागर में, मरघट महलों में गये बदल।
तो क्या अचरज मिट गये अगर, ये शाहजहाँ मुमताजमहल॥
इस जीवन में सब राहगीर, मैं आज चला तुम आये कल।
यह अटल सत्य है संसृति का, जिसकी प्रतिमा है ताजमहल॥

॥ १४ ॥

जिस रात आगरे में फैली थी, शरद चन्द्र - चन्द्रिका विमल।
मेरी किस्मत पर अकस्मात, गिर पड़ा अँधेरी का आँचल॥
वह मौन हुई तो मौन हो गई, मेरे जीवन की हलचल।
वह शान्त क्या हुई, शान्त हो गया, सारे जग का कोलाहल॥
जिसको करना था सुधापान, वह अनायास पी गई गरल।
शायद उसको इस जीवन से, ज्यादा प्यारा था ताजमहल॥

॥ १५ ॥

यह जली जहाँ टकराता है, भूखी जमुना का काला जल।
मुमताज महल से क्या कुछ कम, उसको प्यारा था ताजमहल॥
पर कहाँ एक जन साधारण, और कहाँ एक सम्राट मुगल।
बस इसीलिए बनवा न सका मैं, उसकी खातिर ताजमहल॥
पर ताजमहल के ही समीप, बन गया एक अनुराग महल।
इस यमुना के ही आँगन में, जिस जगह खड़ा है ताजमहल॥

॥ १६ ॥

उन बीते दिवसों की मेरी, साथिन का वह अनुराग महल।
मेरे दिल से पूछो क्या है, उसके आगे यह ताजमहल॥
यह मूर्तिमान वह निराकार, यह दृष्टिमान पर वो ओझल।
यह मूल्यवान वह बे कीमत, यह एक महल पर वह जंगल॥
चाहे आयें यमराज धवल, चाहे बलखाये काल प्रबल।
रह जायेगा अनुराग महल, ढह जाये चाहे ताजमहल॥

॥ १७ ॥

चिर संगिन का यह शब्द, अर्थ से शून्य मुझे जाता है छल।
मुझसे न कहो जीवन साथी, मेरा जाता है खून उबल॥
कोई कह सकता है कैसे, इस दुनियाँ में क्या होगा कल।
कल होने से पहले देखो, क्या करता है यह काल प्रबल॥
अपनी बारी कब आ जाये, आकर फिर क्या सकती है टल।
यह सोच समझ मुमताज महल ने, बनवाया था ताजमहल॥

॥ १८ ॥

मेरी आँखों में घूम रहा है, प्रेरणा बन कर ताजमहल।
मेरे सपनों में झूम रहा है, अपना बनकर ताजमहल॥
मीनारों की ऊँचाई से भी, ऊँची है मेरी मञ्जिल।
इस गहरी यमुना की गहराई, से भी गहराये मेरा दिल॥
मुझसे अवसर कह जाता है, माया बन करके ताजमहल।
मुझको नव जीवन दे जाता है, आशा बन कर ताजमहल॥

॥ १९ ॥

उस पार विजय के जाकर भी, बन देखी का माया जंगल॥
ऊपर नीला अम्बर आगे-पीछे, दांये – बांये जंगल॥
जो आहट से डर जाती थी, सहमी रहती थी पल प्रतिपल।
उसके सिर पर गर्जन करते, मंडराते फिरते हैं बादल॥
इस आज-अजा की बात पर, क्यों है दुनियाँ को विश्वास अटल।
जो करना है वह कर गुजरो, समझाता है ये ताजमहल॥

—०—

वर्षा विहार

॥ दोहा ॥

र सुमिरन यशुमति नन्दन, अरु वृषभान कुमार।
छ अपनी मति सों लिखहुं, पावस केरि बिहार ॥१॥
ास लग्यो श्रावण जबहि, राधे हिय हुलसाय।
कृष्ण लैंन ललिता चतुर, दीनी तुरत पठाय ॥२॥

॥ सवैया ॥

हंसती हुलसी हेर चली, हरि सों करिहौं हठ आज अली;
पुनि मेल गरे गर बाँह भली, मुसकाय लिवाय निकुंज गली।
लखि मूरत मोहन की मधुरी, मन मोहत है छवि छैल छली;
गहि बाँह कहौं तिहि प्रेम रली, तुहि टेरत हैं वृषभान लली ॥३॥

॥ सोरठा ॥

ऐसौ करत विचार, पहुती यशुमति पैर पर।
खेलत नन्द कुमार, मनु इजी पावस ऋतु ॥४॥

॥ घनाक्षरी ॥

रंग घनश्याम घनश्याम मनु छायो घोर,
पीत पट कटि शोभा पिड़सी जनाती है।
हिय मुक्तान माल मानौ झर अखण्ड लगे,
बंसी धुनि गान तान कोकिल सुनाती है॥
रंगी औ विरंगी पुष्प भूषण सजे हैं चारु,
इन्द्र धनु की हूँ प्रभो देखत लजाती है।
"छैल" वनमाल झूला डोर तापै बैठ राधे,
मिस मचको के इत आती उत जाती है ॥५॥

॥ त्रोटक ॥

सखकं अस मूरत मोहन की, सुधि भूलि गई अपने तनकी ।
बलि जाऊं लला तुव चाहन की, अब बात सुनों हमरे मनकी ॥६॥

नभ श्याम घटा घन छाय रही, नहनों बुँदियाँ बरसाय रही ।
जँहे पुष्पन गंध सुहाय रही, तहाँ कोकिल गान सुनाय रही ॥७॥

भ्रमरावलि गूंज नचाय रही, तिन की छबि चित्त सुभाय रही ।
विर हीनन काम जगाय रही, पुनि प्रेमिन हो हुलासाय रही ॥८॥

॥ मोतीदान ॥

डरो जँहे रेशम डोर सुरंग । जड़ो मणि सों पटुली पचरंग ॥
बजं तँहे तालन संग मृदंग । मल्हारन गावत हैं सह अंग ॥६॥

तहाँ चलिए तन साज सिंगार । करो पुनि पूरन आश हमार ॥
सुछैत' छलो वृषभान कुमार । रही तुमरी मग बाट निहार ॥१०॥

लई कटि काछनि बांध गुपाल । गही करि बांसुरिया तत्काल ॥
चले ललिता संग जाहिउताल । लजै गतिको लखि बाल मराल ॥११॥

॥ सवैया ॥

लटकं कटि में पियरो पटका, बन माला हिये लहराय रही,
दमकं शुचि कुंडल दामिन से, कर बांसुरिया छवि छाय रही ।
चमकं पगमें पुनि पांवरियाँ, ललिता तिहि गैल बताय रही,
मुसकाय रही बतराय रही, कार काज हिये हुलसाय रही ॥१२॥

॥ दोहा ॥

पुनि हिय हुंस हेर्यो हरि, कालिन्दी कर कुंज ।
ललित बहुत विकसे सुमन, उड़त अलिन के पुंज ॥१३॥

वर्षा विहार

॥ दोहा ॥

कर सुमिरन यशुमति नन्दन, अरु वृषभान कुमार।
कुछ अपनी मति सों लिखहुं, पावस केरि बिहार ॥१॥
मास लग्यो श्रावण जबहि, राधे हिय हुलसाय।
कृष्ण लेंन ललिता चतुर, दीनी तुरत पठाय ॥२॥

॥ सवैया ॥

हंसती हुलसी हेर चली, हरि सों करिहौं हठ आज अली;
पुनि मेल गरे गर बांह भली, मुसकाय लिवाय निकुंज गली।
लखि मूरत मोहन की मधुरी, मन मोहत है छवि छैल छली;
गहि बाँह कहौं तिहि प्रेम रली, तुहि टेरत हैं वृषभान लली ॥३॥

॥ सोरठा ॥

इसौ करत विचार, पहुती यशुमति पैर पर।
खेलत नन्द कुमार, मनु इजी पावस ऋतु ॥४॥

॥ घनाक्षरी ॥

रंग घनश्याम घनश्याम मनु छायो घोर,
पीत पट कटि शोभा पिड़सी जनाती है।
हिय मुक्तान माल मानौ झर अखण्ड लगे,
बंसी धुनि गान तान कोकिल सुनाती है॥
रंगी औ विरंगी पुष्प भूषण सजे हैं चारु,
इन्द्र धनु की हूँ प्रभो देखत लजाती है।
"छैल" वनमाल झूला डोर तापै बैठ राधे,
मिस मचकी के इत आती उत जाती है ॥५॥

॥ त्रोटक ॥

लखकं अस मूरत मोहन की, सुधि भूलि गई अपने तनकी ।
बलि जाऊं लला तुव चाहन की, अब बात सुनों हमरे मनकी ॥६॥

नभ श्याम घटा घन छाय रही, नहनीं बुंदियां बरसाय रही ।
जहँ पुष्पन गंध सुहाय रही, तहाँ कोकिल गान सुनाय रही ॥७॥

भ्रमरावलि गूंज नचाय रही, तिन की छवि चित्त लुभाय रही ।
पिर हीनन काम जगाय रही, पुनि प्रेमिन हो हुलसाय रही ॥८॥

॥ मोतीदाम ॥

डरी जहँ रेशम डोर मृदंग । जड़ी मणि सों पटुली पचरंग ॥
यजै तहँ तालन संग मृदंग । मल्हारन गावत हैं सह अंग ॥९॥
तहाँ चलिए सन साज सिंगार । करो पुनि पूरन आश हमार ॥
मुछैल' छलो वृषभान कुमार । रही तुमरी बस वाट निहार ॥१०॥
लई कटि काछनि बांध गुपाल । गही करि बांसुरिया तत्काल ॥
चले ललिता संग जाहिउताल । लजैं गतिको लखि बाल मराल ॥११॥

॥ सवैया ॥

लटकै कटि में पियरो पटका, बन माला हिये लहराय रही,
दमकै शुचि कुंडल दामिन से, कर बांसुरिया छवि छाय रही ।
चमकै पगमें पुनि पांवरियाँ, ललिता तिहिं गैल बताय रही,
मुसकाय रही बतराय रही, कार काज हिये हुलसाय रही ॥१२॥

॥ दोहा ॥

पुनि हिय हुंस हेर्यो हरि, कालिन्दी कर कुंज ।
सलिल बहत बिकसे सुमन, उड़त अलिन के पुंज ॥१३॥

॥ रूपघनाक्षरी ॥

चंचल छबीली चारु सखियाँ सुचन्द्रमुखी,
मृदु मुसकात गात मधुर सुरीले गीत।
हावन औ भावन रिझावत हैं स्वामिनि कौं,
काम कला प्रेम की सुजानत अनोखी रीत॥
डारी कदंब ऊपर डारिकैं सुरंगी डोर।
हेम पुखराजन सुपटली जड़ी है पीत।
"छैल" खड़ी वाटकों निहारे वृषभान लली,
जाकी दृग् कोर लोक-लोकन सुलेती जीत॥१४॥

॥ दोहा ॥

लखि आगम ब्रजचन्द्र कौं, गहि कर पुलकित अंग।
इक पटुली पर बैठ दोऊ, झूलन लागे संग॥१५॥

॥ सवैया ॥

इत मोर पखा शिर फूल उतै, इत चन्दन विंदि उतै विलसैं,
अलकावलि सों भ्रमरावलि सी, लट नागिन सी लटकैं गल सैं।
भ्रकुटी दुहुँ ओर भई तिरछी, दृग खंजन मीन समान लसैं,
मन 'छैल' भरै पग पैंग दोऊ, मुख चन्द्र चकोर चितैं हुलसैं॥१६॥

॥ कवित्त ॥

झूलन लगे हैं संग बैठ पटली पै दोऊ,
ताकी मदू शोभा रितु पावस भुलावैरी।
वीणा औ सितार पुनि नूपुर बजैं हैं चारु,
बाजैं मृदंग घन गरजन सुनावैं री॥

'छैल' बहुरंगी चीर पवन झकोरे उड़ै,
इन्द्र धनु की हू प्रभा देखत सजावै री।
राधे की शोभा धरै शीश हरि हियरा मानें,
साँवरी घटाते शशि निकसत आवै री ॥१७॥

॥ घनाक्षरी ॥

उत में जटा जूट औ इतै घन केश राशि,
उतै गंग माँग इतै मोतिन सम्हारी है।
उतै सर्प इतै लट लटकैं हैं नागिन सी,
इत शीश फूल उत चन्द्र की उजारी है॥
उनकै है त्रिपुण्ड इत बेंदी सुभाल लसै,
ये हैं नीलकण्ठ इत नील मणि धारी है।
ये हू भजैं कृष्ण 'छैल' ये हू भजैं नन्दलाल,
राधिका रसीली कैधों शम्भु त्रिपुरारी हैं ॥१८॥

॥ सवैया ॥

इत झूल रही ललिता लटकी, उत झूल रहीं नवला वन में,
इत गूंजत कंज अली उतमें, सखि गावत मोद भरी मन में।
इत झूलत काम "सुछैल" हिये, उत झूलत दाम झरी जन में,
इत अंक लगी वृषभानु लली, उत लालन झूलत नैनन में ॥१९॥

॥ सवैया ॥

नभ श्याम घटा घन घोर घिरी, गरजै सरजै नभ छाय रही।
चमकै छनि दा इत में उत मे, नहनौं बुंदियाँ झर लाय रही॥
पिकि दादुर मोर किलोल करैं, मन मन्द समीर सुभाय रही।
भुकि झोटन "छैल" झकोरन सों, सुन्दरी चुंदरी फहराय रही ॥२०॥

॥ दोहा ॥

झोटन के झोकान सौं, थकित भये दोउ अंग।
उतर हिंडोला पुलक तन, बैठ गये दोऊ संग ॥२१॥

॥ त्रोटक ॥

शुचि आय गई रमनी रजनी। गृह "छैल" चलीं सगरी सजनीं ॥
कटि किंकिण साज लई बजनी। पुनि पांयन पाँवरिया झजनीं ॥२२॥
तिन सुन्दर दीप जलाय लिए। सग अंग सुढंग सजाय लिए।
पुनि प्रीतम पास बुलाय लिए। हँसि कें हिय सौं लिपटाय लिए ॥२३॥

॥ दोहा ॥

कृष्ण राधिका मन मगन, पहुँचे यशुमति पौर।
युगल छवि लखि थकित दृग, अंक भरे दोऊ दौर ॥२४॥
मोद भरी राधा चली, पहुँची पुनि निज धाम।
श्याम सगाई "छैल" लखि थकित भई जब वाम ॥२५॥

॥ इति वर्षा विहार ॥

॥ समर्पण ॥

लिखे छन्द पच्चीस, पावस भादों मास में।
कुटिलन के मन खीस, पुलकित तन साधू गुंजो ॥१॥

कवि परिचय

यदुकुल पद को अर्ध पद, देवराज को अंत।
जगदंबा वाहन सुमिर, मम परिचय मन चित ॥२॥

—:o:—

वड़ी-वड़ी लीलाएँ कीनी

मधुवन आकर रास रचाया,
कृष्ण राधिका प्यारी नें।
बड़ी-बड़ी लीलाएँ कीनी,
बाँके छैल बिहारी नें।

॥ १ ॥

आई पून्यों शरद सुहानी,
फिर गोपिन की याद करी।
तीन लोक की मोहन हारी,
बंसी याने अधर धरी॥
लीनी स्वर सों खैंच सभी,
उस ब्रज के अवतारी नें।
बड़ी-बड़ी लीलाएँ कीनी,
बाँके छैल बिहारी नें।

॥ २ ॥

जो जैसी बैठी थी वैसी,
ही वैसी उठ धाई है।
भाई-बन्धु पति देवर अब,
सभी छोड़कर आई है॥
रोके से ना रुकी पिता के,
बहु बरजी महतारी नें।
बड़ी - बड़ी लीलाएँ कीनी,
बाँके छैल बिहारी नें।

॥ ३ ॥

नई वसन्त पलटी इक पल में,
बीच शरद वन फूल उठे।
प्राणी सारे व्रजमण्डल के,
काम कला में झूम उठे॥
जितनी गोपी थीं उतने ही,
धर लिए रूप खरारी नें।
वड़ी-वड़ी लीलाएँ कीनी,
बांके छैल विहारी नें॥

॥ ४ ॥

छै महीना की रात हुई,
नहिं भेद किसी ने पाया है।
इस लीला का हाल सभी,
अब बीच भागवत आया है॥
'रसिकछैल' जिनकी गाथा को,
गाया है त्रिपुरारी नें।
वड़ी-वड़ी लीलाएँ कीनी,
बांके छैल विहारी नें॥

—:o:—

काहे रोकौ रे डगर पनघट की

॥ १ ॥

काहे रोकौ रे डगर पनघट की;
मेरी बइँयाँ हू मरोरी,
करै मोसौं झकझोरी,
और फोर डारी जल हू की मटकी।
काहे रोकौ रे डगर पनघट की॥

॥ २ ॥

मैं तो नई-नई आई,
काहू गैल न बताई,
संग सखिन को छूट्यौ,
और भटकी।
तू तो अटके अनारी,
नई घूंघट हू फारी,
मेरी लटहू हगन पर,
लटकी — लटकी॥

॥ ३ ॥

मैं तो ब्रज की हूँ गोरी,
वृषभान जी की छोरी,
तू है कौन तो सौं कहा,
मेरी अटकी।
मेरी चूरी करकाई,
और चोलो तरकाई,
गल दुलरी हू दोऊ कर,
झटकी ~ झटकी॥

॥ ३ ॥

नई बसन्त पलटी इक पल में,
बीच शरद वन फूल उठे।
प्राणी सारे ब्रजमण्डल के,
काम कला में झूम उठे॥
जितनी गोपी थीं उतने ही,
धर लिए रूप खरारी नें।
बड़ी-बड़ी लीलाएँ कीनी,
बाँके छैल विहारी नें॥

॥ ४ ॥

छै महीना की रात हुई,
नहि भेद किसी ने पाया है।
इस लीला का हाल सभी,
अब बीच भागवत आया है॥
'रसिकछैल' जिनकी गाथा को,
गाया है त्रिपुरारी नें।
बड़ी-बड़ी लीलाएँ कीनी,
बाँके छैल विहारी नें॥

काहे रोकौ रे डगर पनघट की

॥ १ ॥

काहे रोको रे डगर पनघट की;
मेरी बइँयाँ हू मरोरी,
करें मोसों झकझोरी,
ओर कोर डारी जल हू को मटकी।
काहे रोको रे डगर पनघट की॥

॥ २ ॥

मैं तो नई-नई आई,
काहू गैल न बताई,
संग सखिन को छूट्यो,
और भटकी।
तू तो अटके अनारी,
नई घूँघर हू फारी,
मेरी लटहू दगन पर,
लटकी — लटकी॥

॥ ३ ॥

मैं तो ब्रज की हूँ गोरी,
वृषभान जी की छोरी,
तू है कौन तो सों कहा,
मेरी अटकी।
मेरी चूरी करकाई,
ओर चोली तरकाई,
गल दुलरी हू दोऊ कर,
झटकी — झटकी॥

॥ ३ ॥

नई वसन्त पलटी इक पल में,
बीच शरद वन फूल उठे।
णी सारे व्रजमण्डल के,
काम कला में झूम उठे॥
ातनी गोपी थीं उतने ही,
धर लिए रूप खरारी नें।
ड़ी-बड़ी लीलाऐं कीनी,
बांके छैल बिहारी नें॥

॥ ४ ॥

महीना की रात हुई,
नहि भेद किसी ने पाया है।
स लीला का हाल सभी,
अब बीच भागवत आया है॥
ःसिकछैल' जिनकी गाथा को,
गाया है त्रिपुरारी नें।
ड़ी-बड़ी लीलाऐं कीनी,
बांके छैल बिहारी नें॥

—:o:—

काहे रोकौ रे डगर पनघट की

॥ १ ॥

काहे रोकौ रे डगर पनघट की;
मेरी बइंयां हू मरोरी,
करे मोसों झकझोरी,
और फोर डारी जल हू की मटकी।
काहे रोकौ रे डगर पनघट की॥

॥ २ ॥

मैं तो नई-नई आई,
काहू गैल न बताई,
संग सखिन को छूट्यो,
और भटकी।
तू तौ अटके अनारी,
नई चूंदर हू फारी,
मेरी लटहू रगन पर,
लटकी — लटकी॥

॥ ३ ॥

मैं तो ब्रज की हूं गोरी,
वृषभान जी की छोरी,
तू है कौन तो सों कहा,
मेरी अटकी।
मेरी चूरी करकाई,
और चोली तरकाई,
गल दुलरी हू दोऊ कर,
झटकी — झटकी॥

॥ ४ ॥

मारै तक पिचकारी,
मेरी भीज गई सारी,
सारी हुई हूं उघारी,
भूली वटकी।

मलै मेरै तू गुलाल,
किये दोऊ गाल लाल,
करी कीच में धरन पर,
पटकी – पटकी।

॥ ५ ॥

तनें देख्यो मेरौ अंग,
रहूं सदा तेरे संग,
मैं तो नटनी हूं,
नागर नटकी।

सीधी पाई अब गैल,
तू है मेरौ बांके छैल,
तू तो जाने सब मेरे घट,
घटकी – घटकी॥

क्यों आज खुली है मधुशाला

सुन्दर सपनों का समय गया,
क्यों आज खुली है मधुशाला।

॥ १ ॥

यह सुखमय युग अब बीत गया,
जब लिपटते थे नवला बाला।
वह वैभव सारे लोप हुए,
नहिं रही कहीं हम गजशाला।
उस क्रीड़ा का अब समय कहाँ,
दे पटक सुराही और प्याला।
सुन्दर सपनों का समय गया,
क्यों आज खुली है मधुशाला॥

॥ २ ॥

हे मानव सँने हृदय बीच,
क्यों कायरता को है पाला।
हटता है क्यों तू निज पथ से,
बरसे चाहे गोली भाला॥
मानवता की मधु पीकर के,
हो जा तू बिलकुल मतवाला।
सुन्दर सपनों का समय गया,
क्यों आज खुली है मधुशाला॥

॥ ३ ॥

मत सोच कभी मन अपने में,
नहीं अब तो रहा सहारा है।

॥ ४ ॥

मारै तक पिचकारी,
मेरी भीज गई सारी,
सारी हुई हूं उघारी,
भूली वटकी।
मलै मेरै तू गुलाल,
किये दोऊ गाल लाल,
करी कीच में धरन पर,
पटकी – पटकी।

॥ ५ ॥

तनें देख्यो मेरौ अंग,
रहूं सदा तेरे संग,
मैं तो नटनी हूं,
नागर नटकी।
सीधी पाई अब गैल,
तू है मेरौ बांके छैल,
तू तो जाने सब मेरे घट,
घटकी – घटकी॥

—:o:—

क्यों आज खुली है मधुशाला

सुन्दर सपनों का समय गया,
क्यों आज खुली है मधुशाला।

॥ १ ॥

यह सुखमय युग अब बीत गया,
जब लिखते थे नवला बाला।
यह वैभव सारे लोप हुए,
नहिं रही कहीं हम गजशाला।
उस क्रीड़ा का अब समय कहाँ,
दे पटक सुराही और प्याला।
सुन्दर सपनों का समय गया,
क्यों आज खुली है मधुशाला॥

॥ २ ॥

हे मानव तूने हृदय बीच,
क्यों कायरता को है पाला।
हटता है क्यों तू निज पथ से,
बरसे चाहे गोली भाला॥
मानवता को मधु पीकर के,
हो जा तू बिलकुल मतवाला।
सुन्दर सपनों का समय गया,
क्यों आज खुली है मधुशाला॥

॥ ३ ॥

मत सोच कभी मन अपने में,
नहीं अब तो रहा सहारा है।

जितना अधिकार दूसरे का,
उतना अधिकार तुम्हारा है ॥
उस जगकर्त्ता ने ऊँचे - नीचे,
सब को निज करके डाला।
सुन्दर सपनों का समय गया,
क्यों आज खुली है मधुशाला ॥

॥ ४ ॥

इस आलस को अब दूर पटक,
मन नई उमंगों से भरले।
इस शान्ति प्रेम की वीड़ा को,
तू तोर क्रान्ति जग में भरदे ॥
हट जांय आततायी पल में,
अब धधक उठे भीषण ज्वाला।
सुन्दर सपनों का समय गया,
क्यों आज खुली है मधुशाला ॥

॥ ५ ॥

मन गर्व भरे नर पशु स्वरूप,
क्यों अधिक-अधिक इठलाते हैं।
जीवन अपना केवल स्वार्थ समझ,
वर का अस्तित्व मिटाते हैं ॥
क्यों ठेस लगाता है इतनी,
नहि फूट जांय दिल का छाला।

सुन्दर सपनों का समय गया,
क्यों आज खुली है मधुशाला ॥

॥ ६ ॥

जो 'दीन' बड़े थे धूर्त कभी,
वो आज बड़े दिखलाते हैं।
जो बने स्वार्थ के पुतले हैं,
वे जन सेवक कहलाते हैं ॥
चरितार्थ कहावत पेट कतरनी,
फेर रहे कर में माला।
सुन्दर सपनों का समय गया,
क्यों आज खुली है मधुशाला ॥

—:o:—

तेरा इन झमेलों से क्या काम

किससे जगत है बदनाम,
तेरा इन झमेलों से क्या काम।

॥ १ ॥

आज का मानव पैसे का भक्त है।
प्रेम का अभाव है, दया से रिक्त है ॥

जितना अधिकार दूसरे का,
उतना अधिकार तुम्हारा है ॥
उस जगकर्त्ता ने ऊँचे - नीचे,
सब को निज करके डाला।
सुन्दर सपनों का समय गया,
क्यों आज खुली है मधुशाला ॥

॥ ४ ॥

इस आलस को अब दूर पटक,
मन नई उमंगों से भरले।
इस शान्ति प्रेम की वीड़ा को,
तू तोर क्रान्ति जग में भरदे ॥
हट जांय आततायी पल में,
अब धधक उठे भीषण ज्वाला।
सुन्दर सपनों का समय गया,
क्यों आज खुली है मधुशाला ॥

॥ ५ ॥

मन गर्व भरे नर पशु स्वरूप,
क्यों अधिक-अधिक इठलाते हैं।
जीवन अपना केवल स्वार्थ समझ,
वर का अस्तित्व मिटाते हैं ॥
क्यों ठेस लगाता है इतनी,
नहि फूट जाय दिल का छाला।

सुन्दर सपनों का समय गया,
क्यों आज घुली है मधुशाला ॥

॥ ६ ॥

जो 'दंत' बड़े थे धूर्त कभी,
वो आज बड़े दिखलाते हैं।
जो बने स्वार्थ के पुतले हैं,
वे जन सेवक कहलाते हैं ॥
चरितार्थ कहावत पेट कतरनी,
फेर रहे कर में माला।
सुन्दर सपनों का समय गया,
क्यों आज घुली है मधुशाला ॥

—:o:—

तेरा इन झमेलों से क्या काम

जिससे जगत है बदनाम,
तेरा इन झमेलों से क्या काम।

॥ १ ॥

आज का मानव पैसे का भक्त है।
प्रेम का अभाव है, दया से रिक्त है ॥

अज्ञान के अँधेरे में,
लोभ के सवेरे में,
करता रहता है सदा आराम।
तेरा इन झमेलों से क्या काम ।।

॥ २ ॥

प्रेम के नाम पर ठेकेदारी हैं।
मित्रता में विश्वासघात की आरी है ।।
दिखावे का दौर है,
पीछे कुछ और है,
अज्ञान है नहीं जानता अंजाम ।।
तेरा इन झमेलों से क्या काम ।।

॥ ३ ॥

'छैल' ये आज का जग है।
ऊपर से भक्त भीतर से ठग है ।।
इनके गहरे हैं छल,
इनसे बच-बच केवल,
मंजिल लम्बी है दूर अभी गांम।
तेरा इन झमेलों से क्या काम ।।

—:o:—

कोई किडनप कर लेगा

मत गार्डन में आना अलोन,
कोई किडनप कर लेगा।

छैल अट्रैक्शन तेरी ब्यूटी,
बट तू है प्रोमिज की झूंठी।
है बड़ी स्वीट तेरी टोन,
कोई किडनप कर लेगा।।

रूम में पापा पढ़ते रहते,
और मम्मी से लड़ते रहते।
मत करना मुझको फोन,
कोई किडनप कर लगा।।

फ्रैंड हमारे जलते तुझसे,
ग्रेट जैलिसी रखते मुझसे।
यह बड़ी डैन्जरस जोन,
कोई किडनप कर लेगा।।

आई एम डायिंग फोर यू डियर,
डोन्ट अफ्रेड कम माई नीयर।
मेरे मन से निकले मोन,
कोई किडनप कर लेगा।।

आई एम बैनक्रैप्ट ऑफ लव नाव,
नहीं जानता जीऊँ हाव।
तेरे हर्ट का दे दे लोन,
कोई किडनप कर लेगा।।

—:o:—

तुम दिल चाक हमारा कर बैठे

तुम बैठे बिठाये आँख मिला,
दिल चाक हमारा कर बैठे।
हम ऐसे बने थे सौदाई,
कि यकीन तुम्हारा कर बैठे।।
सहरा में फिरें बस्ती-ढूंढी,
मजनूं भी बने फरहाद बने।
तूफान उठा न किनारा मिला,
दुनियाँ से किनारा कर बैठे।।
जो देखते थे हँसते थे सभी,
अँगुली उठती दीवाने पर।
बेसूद इशारों से घबरा,
हम खुद ही इशारा कर बैठे।।
जिनको हमने समझा अपना,
वे आज हुए हैं बेगाने।
जब कोई हमारा हो न सका,
हम तेरा सहारा कर बैठे।।
हमने मैखाना छोड़ दिया,
और तोड़ दिया था पैमाना।
अब ऐसे परे हम हाल हुए,
फिर शौक दुबारा कर बैठे।
हो 'हंस' बुरा इस दुनियाँ का,
पत्थर भी पड़े बदनाम हुए।
एक चोट गंवारा था न कभी,
अब चोट गंवारा कर बैठे।।

—:o:—

दुर्भाग्य ग्रस्त सैनानी की
इक टूटी हुई कहानी

दुर्भाग्य ग्रस्त सैनानी की,
इक टूटी हुई कहानी है।

बढ़ता था जब उत्साह लिए,
इन तोपों के अंगारों में।
घुस जाता था निर्भीक हृदय,
विद्युत सा वह असि धारों में॥

अधरों पै थां बस एक शब्द,
स्वातंत्रिक ज्योति जगानी है।
दुर्भाग्य ग्रस्त सैनानी की
इक टूटी हुई कहानी है॥

करवाल निकल कर अर्द्ध चन्द्र सी,
नग्न नृत्य जब करती थी।
तब अश्व मार, अरि उदर फार कर,
प्राण अनेकों हरती थी॥

वक्षःस्थल था उत्साह भरा,
वीरोचित टेक निभानी है।
दुर्भाग्य ग्रस्त सैनानी की,
इक टूटी हुई कहानी है॥

जब विजय पताका फहराई,
आनन्द हृदय में उमड़ पड़ा।
पर हाय रे! मानव स्वार्थ-भरे,
मन द्वेष का धुंआ घुमड़ पड़ा॥

क्या पुरस्कार स्वागत को भी,
उसको अब आग भुलानी है।
दुर्भाग्य ग्रस्त संतानों की,
इक टूटी हुई कहानी है॥

निस्तेज हो गया दुःखित महा,
मुट्ठी से आँस बस छूट पड़ी।
उस भग्न हृदय संतानों के,
जीवन की बेलो टूट पड़ी॥

अस्फुट में निकले "टँल" शब्द,
यह अन्तिम लाश उठानी है।
दुर्भाग्य ग्रस्त संतानों की,
इक टूटी हुई कहानी है॥

— o:—

मानवता की पुकार

पर भूखा हूं वो खाने दो।

॥ १ ॥

मेरा सब वैभव ले लो तुम,
अपनी तृष्णा मिट जाने दो।

पर भूखा हूँ दो दाने दो ॥

॥ २ ॥

करते हो शोषण मानव का,
है प्यास रुधिर की तुम्हें आज।
मदिरा से आग नहीं बुझती,
लज्जा को भी है लगी लाज॥
मुझ को दो बूँद नहीं जलकी,
आँसू से प्यास बुझाने दो।

पर भूखा हूँ दो दाने दो॥

॥ ३ ॥

हमको है आती सुखद नींद,
पर पीड़न को अपनाया है।
भूखे जीवन को खेल समझ,
उनका अस्तित्व मिटाया है॥
है स्नेह रहित यह दीप लाठ,
तिल-तिल करके जल जाने दो।

पर भूखा हूँ दो दाने दो॥

॥ ४ ॥

हो भूल चुके तुम मानवता,
उस जगत ईश को भूल गये।

यह गया स्वार्थ सब गया ज्ञान,
खा-खा कर परधन फूल गये ॥
निभने दो अपनी टेक 'हंस'
मैं मिटता हूं मिट जाने दो।
पर भूखा हूं दो दाने दो ॥

—:o:—

रितुराज आज तेरा स्वराज

रितुराज आज तेरा स्वराज।
सज गया बसन्ती सकल साज ॥

॥ १ ॥

अब प्रफुल्लित व्यथित हृदय होते,
उदर हृदय के बोध नये।
हैं नई तरंग आज उठी,
सब दूर दुःख सन्ताप गये ॥
जो प्रयसि प्रांगण में बिगड़े,
वह आज बने हैं सकल काज।
रितुराज आज तेरा स्वराज,
सज गया बसन्ती सकल साज ॥

॥ २ ॥

नव किसलय उगे डालियों पर:
विहँगों का दल अब चहक उठा।
हैं सुमन खिले दिशि में अनन्त,
वन उपवन सारा महक उठा॥
कुछ फल गदराये नये नये
दाड़िम के सर पर सजा ताज।
रितुराज आज तेरा स्वराज,
सज गया बसन्ती सकल साज॥

॥ ३ ॥

है प्रकृति खेलती आज फाग,
जम गया बसन्ती सुघड़ राग।
सब सोई इच्छा उठीं जाग,
अलि लगे चूसने मधु पराग॥
नर-नारि हुए अलमस्त सभी,
बिसरी है मन से सकल लाज॥
रितुराज आज तेरा स्वराज,
सज गया बसन्ती सकल साज॥

॥ ४ ॥

है आज किसी से मुझे प्रेम,
कुछ तू रितुराज सहाय कहो।

उसका मन मेरी ओर खींच,
मेरा मन उसके साथक हो ।।
है 'रसिक टंन' गहरा समुद्र,
कर पार डूबता ये जहाज।
रितुराज आज तेरा स्वराज,
सज गया बसन्ती सकल साज ।।

—:o:—

गजल

याद - ए - इश्क

जो तेरी मुहब्बत अचूक बनी,
अब आतिश बनती जाती है।

पहिले था रसाया गलियों में,
अब दिल में आग लगाती है।

कोशिश पर कोशिश मैंने की,
इस इश्क को बदलूं इबादत से।

जब जब करता हूं मैं याद खुदा,
सूरत तेरी सामने आती है॥

यह जोशे जुनू जब बढ़ता है,
चल देता हूँ मैं मैखाने को।

हर छलकन में पैमाने की,
तेरी याद थिरकती आती है॥

गुलशन में न चैन न सेहरा में,
उम्मीद दीद की खत्म हुई।

बेकल हूँ बहुत कल 'छैल' कहाँ,
मेरी आह न तुझ तक जाती है॥

—:o:—

गजल

वफाओं पर रवा वेदाद रखना।
वह तर्जे जुल्म जालिम याद रखना॥

बहार आई है फिर रहशत बढ़ेगी,
नुहैया बेड़ियाँ हद्दाद रखना।

'दीन' इसफत में सर के देने वाले,
हमी होंगे हमीं यह याद रखना।

यह जाते वक्त उनका कल का वादा,
मेरा घबरा के कहना याद रखना।

—:o:—

क्यों चुपके-चुपके रोती है ?

कुछ याद आई आँसू मचले,
अपना धीरज क्यों खोती है ?
क्यों चुपके-चुपके रोती है ?

नहीं सोच-समझ कर काम किया।
मिटी आप उन्हें बदनाम किया।
यह रोग बुरा कुछ अब तो संभल,
क्यों बीज विरह के बोती है ?
क्यों चुपके-चुपके रोती है ?

जिनको अपना दिल दे डाला,
वे बदल गए और चले गये।

जब जब करता हूं मैं याद खुदा,
सूरत तेरी सामने आती है॥

यह जोशे जुनू जब बढ़ता है,
चल देता हूँ मैं मैखाने को।

हर छलकन में पैमाने की,
तेरी याद थिरकती आती है॥

गुलशन में न चैन न सेहरा में,
उम्मीद दीद की खत्म हुई।

वेकल हूँ बहुत कल 'छैल कहाँ,
मेरी आह न तुझ तक जाती है॥

—:o:—

गजल

बफाओं पर रवा वेदाद रखना।
वह तर्जे जुल्म जालिम याद रखना॥

बहार आई है फिर रहशत बढ़ेगी,
मुहैया वेड़ियाँ हद्दाद रखना।

'दिल' इसफत में सर के देने वाले,
हमी होंगे हमीं यह याद रखना।

यह जाते वक्त उनका कल का वादा,
मेरा घबरा के कहना याद रखना।

—:o:—

क्यों चुपके-चुपके रोती है ?

कुछ याद आई आँसू मचले,
अपना धीरज क्यों खोती है ?
क्यों चुपके-चुपके रोती है ?

नहीं सोच-समझ कर काम किया।
मिटी आप उन्हें बदनाम किया।
यह रोग बुरा कुछ अब तो सँभल,
क्यों बीज विरह के बोती है ?
क्यों चुपके-चुपके रोती है ?

जिनको अपना दिल दे डाला,
वे बदल गए और चले गये।

उनके आने की आश नहीं,
फिर किसके दीप सँजोती है ?
क्यों चुपके-चुपके रोती है ?

है नाम दुःख इस दुनियाँ का,
आराम मिला यहां 'छैल' किसे।
अब इन धंधों के फंदों में,
क्यों अपनी जान बिगोती है ?
क्यों चुपके-चुपके रोती है ?

—:o:—

गजल

इकरार करो तुम या न करो,
मजबूर हूँ मैं इसरार नहीं।
वे वायदे तुम्हारे क्या खत्म हुए,
मुझसे क्या तुम्हें अब प्यार नहीं ॥
वह छुप-छुप कर मिलना मुझसे,
गुलशन में किनारे दरिया के।
अब रहते हो साया से भी अलग,
क्या मुझ पै तुम्हें इतवार नहीं ॥

उन आँखों में मय की लाल भरी,
मद होश हुआ था पी-पी कर।
कब पी पी पिलाई थी किसने,
नहिं याद है बाकी शुमार नहीं॥

बस इतनी समझता हूँ बात अभी,
यह बस्ती मेरी वीरान हुई।
हैं जख्म हजारों इस दिल में,
उस दर्द की कुछ भी शुमार नहीं॥

जब तक चलती है ये सांस मेरी,
जी खोल मुझे तुम तड़पा लो।
दो ठोकर हटा के नकाब जरा,
फिर बाकी रहेगा गुबार नहीं॥

तेरी तीरे नजर ने मार दिया,
क्या असर है तुम्हारी आँखों में।
अब 'दंल' जिला दो यह कह कर,
इकरार है अब इनकार नहीं।

—:o:—

क्यों दर्द हृदय में उठा आज

॥ १ ॥

इक पुष्प वाटिका की कलिका,
जो विकसित अभी न हो पाई।
अलि छू न सका था मधु जिसका,
हिम कण में अभी न सो पाई॥
इन नव वल्लरि किसलय के बीच,
थी सुन्दर जिसका सजा राज।
क्यों दर्द हृदय में उठा आज॥

॥ २ ॥

इस शीत मरुत ने आकर के,
उसका तन थर-थर कँपा दिया।
जो कोमलता से कोमल थी,
बिन वह्नि उसे झट जला दिया॥
अस्तित्व क्षणों में दिया मिटा,
बिन बादल उस पर पड़ी गाज।
क्यों दर्द हृदय में उठा आज॥

॥ ३ ॥

उसका वह कोमल सुन्दर तन,
हो क्षार-क्षार रज में मिलता।
जो कभी थिरकता हो प्रसन्न,
क्षत-विक्षत 'छिल' पड़ा हिलता॥
इतने पर भी है गंध युक्त,
है पड़ी पंखुरी भरी लाज।
क्यों दर्द हृदय में उठा आज॥

—:o:—

ऐसी काहे को सुनावें मीठी तान रे

॥ १ ॥

बादल घिर-घिर आए,
मोहे कछु न सुहाए।
ऐसी काहे को सुनावे मीठी तान रे॥

॥ २ ॥

जब से नजरों से नजरें लड़ी हैं,
मोरे नैना सावन की झड़ी हैं।
मोहे काहे कल पाये,
जिया नाय कल पाये।
ऐसी काहे को सुनावें मीठी तान रे॥

॥ ३ ॥

बिजुरी चमक-चमक डर पावें।
मोहें याद पिया की सतावें॥
सर-सर चलती पवन।
सूने लगते भवन॥
ऐसी काहे को सुनावें मीठी तान रे॥

॥ ४ ॥

अब तो लौट बलम घर आवो।
मेरे जी की लगी को बुझावो॥
अब तो जोगिन बनी।
दुखिया ढ़ैल घनी॥
ऐसी काहे को सुनावें मीठी तान रे॥

—:o:—

क्यों दर्द हृदय में उठा आज

॥ १ ॥

इक पुष्प वाटिका की कलिका,
जो विकसित अभी न हो पाई।
अलि छू न सका था मधु जिसका,
हिम कण में अभी न सो पाई॥
इन नव वल्लरि किसलय के बीच,
थां सुन्दर जिसका सजा राज।
क्यों दर्द हृदय में उठा आज॥

॥ २ ॥

इस शीत मरुत ने आकर के,
उसका तन थर-थर कँपा दिया।
जो कोमलता से कोमल थी,
विन वह्नि उसे झट जला दिया॥
अस्तित्व क्षणों में दिया मिटा,
विन बादल उस पर पड़ी गाज।
क्यों दर्द हृदय में उठा आज॥

॥ ३ ॥

उसका वह कोमल सुन्दर तन,
हो क्षार-क्षार रज में मिलता।
जो कभी थिरकता हो प्रसन्न,
क्षत-विक्षत 'छैल' पड़ा हिलता॥
इतने पर भी है गंध युक्त,
है पड़ी पंखुरी भरी लाज।
क्यों दर्द हृदय में उठा आज॥

—:o:—

ऐसी काहे को सुनावें मीठी तान रे

॥ १ ॥

बादल घिर-घिर आए,
मोहे कछु न सुहाए।
ऐसी काहे को सुनावे मीठी तान रे॥

॥ २ ॥

जब से नजरों से नजरें लड़ी हैं,
मोरे नैना सावन की झड़ी हैं।
मोहे काहे कल पावे,
जिया नाय कल पावे।
ऐसी काहे को सुनायें मीठी तान रे॥

॥ ३ ॥

बिजुरी चमक-चमक डर पायें।
मोहे याद पिया की सतायें॥
सर-सर चलती पवन।
सूने लगते भवन॥
ऐसी काहे को सुनायें मीठी तान रे॥

॥ ४ ॥

अब तो लौट बलम घर आवो।
मेरे जी की जगी को बुझावो॥
अब तो जोगिन बनी।
दुखिया दुःख घनी॥
ऐसी काहे को सुनायें मीठी तान रे॥

—:o:—

बलम तुम पै मर जाऊँगी।

विष बांधे चुँदरिया की छोर,
बलम तुम पै मर जाऊँगी।

बाट तकत मोहै रैन बीत गई,
तुम आये भये भोर,
बलम तुम पै मर जाऊँगी॥

नीर बहत दोऊ नैनन सों,
जियरा लेत हिलोर,
बलम तुम पै मर जाऊँगी॥

सोतन के घर सौ-सौ फेरे,
काहे न आये घर मोरे,
बलम तुम पै मर जाऊँगी॥

'रसिक छैल' मोहे दर्शन दीजै,
बृजपति हृदय चकोर।
बलम तुम पै मर जाऊँगी॥

—:o:—

मैं प्रतीक्षा में विकल

मैं प्रतीक्षा में तुम्हारी,
विकल होती आज प्रतिपल
जब उगा प्राची दिशा में सूर्य,
तब मैं जग चुकी थी।
मिलन सुख की उस घड़ी का,
भास दिल में कर चुकी थी॥
प्रेम की थी लहर उठती,
और जाता अंग हल-हल।
मैं प्रतीक्षा में तुम्हारी,
विकल होती आज प्रतिपल॥
मैं तड़पती हो रही हूँ,
और सब तन जल रहा है।
आज सूनापन हृदय का,
बिन तुम्हारे खल रहा है॥
हो चली है अब तो सन्ध्या,
और दिन भी है रहा ढल।
मैं प्रतीक्षा में तुम्हारी,
विकल होती आज प्रतिपल॥
आज बनकर नयन बादल,
"हंस" हैं आंसू बहाते।
आह बनकर गरजते हैं,
पास हैं तुमको बुलाते॥
है हृदय में विरह पीड़ा,
हो रही हूं आज बेकल।
मैं प्रतीक्षा में तुम्हारी,
विकल होती आज प्रतिपल॥

—:o:—

चली रे गाँव की छोरी

पनिआँ भरन को चुपके-चुपके,
चली रे गाँव की छोरी।
गोरी-चली रे गाँव की छोरी॥

करै मीठी - मीठी बात,
जाकौ सुन्दर सौ गात।
और सूरत भोरी - भोरी,
गोरी - चली रे गाँव की छोरी॥

आई बरसात,
कैसी अँधेरी रात,
जिया घबरात,
कब होगा ये परभात।

करै बतियाँ रसीली,
और चाल है रंगीली।
जासों खिल गई खोरी - खोरी,
गोरी - चली रे गाँव की छोरी॥

चुप सैन चलावे,
कुछ हँस बतरावे,
मेरे जिया को लुभावे,
सब बदन दुरावे।

जाकौ सुन्दर सौ रूप,
जैसे बादल की धूप,
डारि मोहिनी अनूप,
चली चढ़ने को कूप।

मन छीन लियो यह ओरी,
गोरी-चमी रे गांव की छोरी ।।

नींद नहीं अब आवं,
विरहा मदन जरावं ।
'हंस' छिटक रही चन्द्र - चांदनी,
आता चोरी — चोरी,

गोरी-चमी रे गांव की छोरी ।।

—:o:—

चल रहा पथिक दुर्धर

चल रहा है पथिक दुर्धर,
प्रणय के इस प्रेम पथ पर ।
है अनिश्चित समय जिसका,
और ना विश्राम पलभर ।।
पूर्ण अपनी कंटकों मे,
ठोकरें पग-पग पे खाता ।
शून्य पथ की शून्यता को,
करुण क्रन्दन से जगाता ।।

हो विकल अधखुले नयनों से,
बहाता अश्रु झर-झर।
चल रहा है पथिक दुर्धर,
प्रणय के इस प्रेम पथ पर॥

तज दिये आराम भोजन,
जल नहीं इसने पिया है।
नाम लेकर प्रेयसी का,
प्रेम के पथ में जिया है॥

ग्रीष्म की उत्ताप झेली,
शीत का हिम अपने तन पर।
चल रहा है पथिक दुर्धर,
प्रणय के इस प्रेम पथ पर॥

चरण डगमग कर रहे हैं,
श्वास हैं रुक-रुक के आती।
शब्द अस्फुट हैं निकलते,
और देहो थर-थराती॥

आत्म बल के हीं भरोसे,
"छैल" बढ़ता है निरन्तर।
चल रहा है पथिक दुर्धर,
प्रणय के इस प्रेम पथ पर॥

है इसे विश्वास,
बेला शुभ मिलन की आयेगी।
कोमल करों से अंक भर,
प्रेयसि इसे अपनायेगी॥

आशा तभी हों पूर्ण चमके,
भाग्य इसका गगन ऊपर।
चल रहा है पथिक दुर्धर,
प्रणय के इस प्रेम पथ पर॥

—:o:—

आज बसन्त कहाँ ?

॥ १ ॥

दुःख भरा सारा गर्मी,
    द्वेष जगे सुख कहाँ।
    आज बसन्त कहाँ॥

॥ २ ॥

उजड़ रही है प्रेम की बस्ती।
    भूल गये हैं मन की मस्ती॥
शोक भरा है आज जहाँ।
    आज बसन्त कहाँ॥

॥ ३ ॥

बिन संगीत के दूभर जीना।
    टूट गयी है जीवन बीना॥
गा न सकूँगा राग यहाँ।
    आज बसन्त कहाँ॥

॥ ४ ॥

'हंस' बुरा है जग का मेला।
    छोड़ इसे चल दे तू अकेला॥
प्रेम भी हो रितुराज जहाँ।
    आज बसन्त कहाँ॥

— o —

हो विकल अधखुले नयनों से,
बहाता अश्रु झर - झर ।
चल रहा है पथिक दुर्धर,
प्रणय के इस प्रेम पथ पर ॥
तज दिये आराम भोजन,
जल नहीं इसने पिया है ।
नाम लेकर प्रेयसी का,
प्रेम के पथ में जिया है ॥
ग्रीष्म की उत्ताप झेली,
शीत का हिम अपने तन पर ।
चल रहा है पथिक दुर्धर,
प्रणय के इस प्रेम पथ पर ॥
चरण डगमग कर रहे हैं,
श्वास हैं रुक-रुक के आती ।
शब्द अस्फुट हैं निकलते,
और देही थर - थराती ॥
आत्म बल के हाँ भरोसे,
"छैल" बढ़ता है निरन्तर ।
चल रहा है पथिक दुर्धर,
प्रणय के इस प्रेम पथ पर ॥
है इसे विश्वास,
वेला शुभ मिलन की आयेगी ।
कोमल करों से अंक भर,
प्रेयसि इसे अपनायेगी ॥
आशा तभी हों पूर्ण चमके,
भाग्य इसका गगन ऊपर ।
चल रहा है पथिक दुर्धर,
प्रणय के इस प्रेम पथ पर ॥

—:o:—

॥ ३ ॥

कर सोलह श्रृंगार नार जब,
सखियों संग निकलती थी।
रमा और उर्वशी सी बन,
दीप - ज्योति सी जलती थी॥
अब हो निराभरण नारी निज,
नागिन रूप मटकाती है।
भारत की प्राचीन संस्कृति,
शत - शत अश्रु बहाती है॥

॥ ४ ॥

पहिले बालक ब्रह्मचारी बन,
गुरु गृह जाकर पढ़ते थे।
विद्या, बुद्धि, शक्ति संग लेकर,
सिंह सरीखे बढ़ते थे॥
अब कॉलिज के छात्रों को,
मजनूं सी देह दिखाती है।
भारत की प्राचीन संस्कृति,
शत-शत अश्रु बहाती है॥

॥ ५ ॥

पहिले गुरुजन की सेवा कर,
हिय में अति सुख पाते थे।
लाज बचाने भारत की,
बलिदान सभी हो जाते थे॥

नई सभ्यता

नई सभ्यता आज कल्ल की,
इठलाती मुसकाती है।
भारत की प्राचीन संस्कृति,
शत-शत अश्रु बहाती है॥

॥ १ ॥

राग - रागिनी अंग सहित वज,
जीवन - ज्योति जगाती थीं।
ताल, मृदंग, परवावज की,
जन-मन को मस्त वनाती थी॥
अब आधुनिक ध्वनि पश्चिम की,
अपना ठाठ जमाती है।
भारत की प्राचीन संस्कृति,
शत-शत अश्रु वताती है॥

॥ २ ॥

पहिले पायल की ध्वनि सुनकर,
शान्त तपोवन काँप उठा।
विश्वामित्र तपस्वी तप को,
छोड़ मगन मन नाच उठा॥
अव करती है ट्विस्ट वावरी,
सी-सी सव देह हिलाती है।
भारत की प्राचीन संस्कृति,
शत - शत अश्रु बहाती है॥

॥ ३ ॥

कर सोलह शृंगार नार जब,
सखियों संग निकलती थी।
रमा और उर्वशी सी बन,
दीप-ज्योति सी जलती थी॥
अब हो निराभरण नारी निज,
नागिन रूप मटकाती है।
भारत की प्राचीन संस्कृति,
शत-शत अश्रु बहाती है॥

॥ ४ ॥

पहिले बालक ब्रह्मचारी बन,
गुरु गृह जाकर पढ़ते थे।
विद्या, बुद्धि, शक्ति संग लेकर,
सिंह सरीखे बढ़ते थे॥
अब कॉलिज के छात्रों को,
मजनूं सी देह दिखाती है।
भारत की प्राचीन संस्कृति,
शत-शत अश्रु बहाती है॥

॥ ५ ॥

पहिले गुरुजन की सेवा कर,
हिय में अति सुख पाते थे।
लाज बचाने भारत की,
बलिदान सभी हो जाते थे॥

अब टोली तिय के झगड़ों में,
चक्कू नित्य चलाती है।
भारत की प्राचीन संस्कृति,
शत-शत अश्रु बहाती है॥

॥ ६ ॥

ब्राह्मण पढ़ते वेद तिजारत,
वैश्य लोग ही करते थे।
क्षत्री शासन करते रण में,
सिंह समान विचरते थे॥
करते शूद्र सभी की सेवा,
यह हिस्ट्री बतलाती है।
भारत की प्राचीन संस्कृति,
शत-शत अश्रु बहाती है॥

॥ ७ ॥

अब शासन पर शूद्र मंत्रि पद,
ब्राह्मण वैश्य सँभाले हैं।
क्षत्री हो गए खतम बचे हैं,
वो भी मरने वाले हैं॥
'छैल' अंधेरी सदा न रहती,
फेर चाँदनी आती है।
भारत की प्राचीन संस्कृति,
शत-शत अश्रु बहाती है॥

—:o:—

शरद आई शरद आई

॥ १ ॥

कर गई वर्षा किनारा,
गगन निर्मल हो चला है।
उन गरजने बादलों का,
रोष निष्फल हो चला है।
ओस कण झरने लगे हैं,
संग में निज शीत लाई।

शरद आई शरद आई।

॥ २ ॥

अब दादुर बोलते हैं,
गर्व था जिनमें समाया।
अपनी - अपनी बोलते थे,
रंग था अपना जमाया।
वह क्षणिक उत्तेजना थी,
और थी झूठी दिखाई।

शरद आई शरद आई।

॥ ३ ॥

अब चलेगी शीत वायु,
और दिनकर कम तपेंगे।
पंक वंचित भूमि होगी,
संत भी रस्ते कटेंगे॥
जग करेगा मौज होगी,
दादुरों को अब हँसाई।

शरद आई शरद आई॥

यह जीवन भी क्या जीवन है
जहाँ शान्ति हृदय को मिले नहीं

॥ १ ॥

उद्यान नाम पर है ऊजड़,
कहते हैं खेत जो हैं ऊसर।
समझें हैं सुखी जो दुःखी महा,
है पुष्प वही जो खिले नहीं।
यह जीवन भी क्या जीवन है,
जहाँ शान्ति हृदय को मिले नहीं ॥

॥ २ ॥

है साधु जिसे वैराग नहीं,
है प्रेम वही जहाँ राग नहीं।
सौभाग्य वही जहाँ भाग्य नहीं
चंचल है वही जो हिले नहीं ॥
यह जीवन भी क्या जीवन है,
जहाँ शान्ति हृदय को मिले नहीं ॥

॥ ३ ॥

सुन्दर है वही जो हो कुरूप,
छाया है वही जहाँ खिले धूप।
है 'छैल' गर्म जो शीत महा,
अरु नर्म वही जो छिले नहीं ॥
यह जीवन भी क्या जीवन है,
जहाँ शान्ति हृदय को मिले नहीं ॥

कैसो ये देश निगोरा

॥ १ ॥

मैं जमुना जल भरन जाति ही,
देख रूप मेरो गोरा।
कैसो ये देश निगोरा॥

॥ २ ॥

मोते कहै नेक चलो कुंजन में,
तनक – तनक से छोरा।
परे आँचन में डोरा।
कैसो ये देश निगोरा॥

॥ ३ ॥

जियरा देख डरानो री सजनी,
लाज – शरम की ओरा।
कैसो ये देश निगोरा॥

॥ ४ ॥

कहा बालक कहा लोग - लुगाई,
एक से एक छिछोरा।
काहू सो काहू को जोरा,
कैसो ये देश निगोरा॥

॥ ५ ॥

निपट निडर नन्द को री सजनी,
घलत लगावें घोरा।
कैसो ये देश निगोरा॥

॥ ६ ॥

कहत गुमान सिखाय सखन,
मेरौ सगरौ अंग टटोरा।
मानत करत निहोरा,
कैसो ये देश निगोरा ॥

—:o:—

मौ पै रंग डार गयो नन्दलाल

मैं तो सोय रही सपने में,
मौ पै रंग डार गयो नन्दलाल।

सपने में श्याम मेरे घर आये।
ग्वाल-बाल कोऊ संग न लाये ॥

अजी पौढ़ गयौ पलका में मेरे संग।
देखन लाग्यौ मेरे अंग-अंग ॥

दई पिचकारी भर-भर रंग।

पिचकारी के लगत ही,
मोरे मन में उठी तरंग।

जैसे मिश्री कन्द की,
घोर पिवाय दई भंग॥

घोर पिवाय दई भंग,
गाल दोऊ कर दिये लाल गुलाल।

मैं तो सोय रही सपने में,
मो पै रंग डार गयो नन्दलाल॥

—:o:—

इक भूला हुआ मुसाफिर

मैं सुनसान उजड़े पथ पर,
इक भूला हुआ मुसाफिर हूं॥

॥ १ ॥

जब अस्ताचल पर पहुंचा रवि,
अवसान दिवस का आया है।

रजनी की काली चादर ने,
जग सारे को लिपटाया है॥
है अति भयावना अंधकार,
फिर भी निश्चय ऊपर थिर हूँ।
मैं सुनसान उजड़े पथ पर,
इक भूला हुआ मुसाफिर हूँ॥

॥ २ ॥

है पूर्ण कंटकों से जंगल,
अवनी ऊपर कंकड़ फैले।
नभ में हैं घटायें घिरी हुई,
बादल छाये मैले - मैले॥
नहिं साथ कोई साथी है यहाँ,
अरु जन मण्डल से बाहिर हूँ।
मैं सुनसान उजड़े पथ पर,
इक भूला हुआ मुसाफिर हूँ॥

॥ ३ ॥

यह 'छैल' बड़ा है कठिन मार्ग,
वह पार इसे हो जाते हैं।
जो धीर धरे चलते जाते,
प्रातः की किरणें पाते हैं॥
जाने है मुझे साधू कोई,
कहीं पागल करके जाहिर हूँ।
मैं सुनसान उजड़े पथ पर,
इक भूला हुआ मुसाफिर हूँ॥

बहुत कठिन है डगर पनघट की

बहुत कठिन है डगर पनघट की।
कैसे मैं जमुना से भर लाऊँ मटकी॥

॥ १ ॥
मलत गुलाल लाल. मग अटकत।
अंक भरत मोतिन लर लटकी॥

॥ २ ॥
बर बस बांह पकर झक झोरत।
लंगर की चटक अटक हिय खटकी॥

॥ ३ ॥
बिन देखे नहिं चैन परत है।
बाट तकत भटकी मटकी॥

॥ ४ ॥
निरखत चकित चितै मोहित सी,
गहि पट झट पर हट चट मटकी॥

॥ ५ ॥
"रसिक छैल" कहि हँस लग पिय गरसों,
लाज रखो मेरे घूंघट पटकी॥

—:o:—

हरि नै दियो धनुष कूँ तोर

भारी भूप जुरे मिथिला में,
हरि नै दियो धनुष कूँ तोर।

॥ १ ॥

वहुत दिन भजन शंभु कौ कीयौ।
तव पिनाक हर नै दै दीयो॥
लाय धर्‍यौ अपने मन्दिर में,
पूजन लागे भोर।

हरि नै दियो धनुष कूँ तोर॥

॥ २ ॥

रच्यौ स्वयं वर मंगल गाये।
देश-देश के भूपति आये॥
वैठे निज निज मंच सभा में,
उठ्‌यौ अनौखो शोर।

हरि नै दियो धनुष कूँ तोर।

॥ ३ ॥

कही जनक सव सभा हँकारी।
शिव को धनुष कठिन अति भारी॥
जो कोऊ तोरै सिया व्याहिले,
आज भरऔ सव जोर।
हरि नै दियौ धनुष कूँ तोर॥

॥ ४ ॥

कर - कर बल सब राजा हारे ।

तब रघुवर उठकें पग धारे ॥

रसिक छैल इक पलक धिनक में,

दोनों पकर मरोर ।

हरि नै दियो धनुष कूं तोर ॥

—:o:—

तेरा नटवर नन्द किशोर जशोदा···

तैरा नटवर नन्द किशोर,

जसोदा हमते अटकै री ।

॥ १ ॥

छोटी उमर बड़ो है ढ़ोटो,

लगै सूधरो है पर खोटो ।

छीना झपटी करै लिपट,

मेरे गल सों लटकै री ।

तेरा नटवर नन्द किशोर,
जशोदा हमते अटकै री ॥

॥ २ ॥

मार कांकरी गागर फोरै,
ऊँगरी पकर मेरी बांह मरोरै।
नथ दुलरी कर देय,
हार हियरा को झटकै री।
तेरा नटवर नन्द किशोर,
जशोदा हमते अटकै री ॥

॥ ३ ॥

नाहीं करूँ नैक नहि मानें,
मन मानी अपनी ही तानें।
नैनन सैन चलाय,
कमर पै करधन मटकै री।
तेरा नटवर नन्द किशोर,
जशोदा हमते अटकै री ॥

॥ ४ ॥

'रसिक छैल' बिन मन नहि लागै,
दर्शन पाय प्रीत अति जागै।
सबरे जगके सुख मिलै,
दुःख तनते सटकै री।
तेरा नटवर नन्द किशोर,
जसोदा हमते अटकै री ॥

इक अनोखी बात पैदा कर रहा हूँ

हूं मैं जीवित वास्तव में मर रहा हूं ।
इक अनोखी बात पैदा कर रहा हूं ॥

॥ १ ॥

खूंटिया जीवन की सब कसती गईं,
और परस्पर धार में गसती गईं ।
कसते-कसते तार टूटे साज के,
रागिनी बिखरीं लहर धँसती गईं ॥
दुःख है पर राग भैरव भर रहा हूं ।
इक अनोखी बात पैदा कर रहा हूं ॥

॥ २ ॥

दुःख कितने ही पड़ें नहिं हारता हूं,
क्रोध और अभिमान को मैं मारता हूं ।
हूं अहिंसक फिर भी अपने साथ मैं,
शील के धनुबाण तन पर धारता हूं ॥
हैं सुरक्षित वर्म फिर भी डर रहा हूं ।
इक अनोखी बात पैदा कर रहा हूं ॥

॥ ३ ॥

'छैल' इतना ज्ञान कहाँ कविता बनाएँ,
और सुन्दर भावना तन में जगाएँ ।
जिनके मन सूखे हुए और जल चुके हैं,
बीज फिर अनुराग का कैसे उगाएँ ॥
पर विरह के गीत गा दुःख हर रहा हूं ।
इक अनोखी बात पैदा कर रहा हूं ॥

—:o:—

कवि कब गीत लिखा करता है

॥ १ ॥

जब दुःख भूमि पर छा जाते,
पापों से जन-गण घबराते,
तब उनका पतन देख करके,
मन भी निश्वास भरा करता है।
कवि कब गीत लिखा करता है॥

॥ २ ॥

जब क्रान्ति भरी हो रग-रग में,
उत्थान भरा हो सब जग में,
तब हल्चल इनको देने को,
भय में स्वच्छन्द हँसा करता है।
कवि कब गीत लिखा करता है।

॥ ३ ॥

जागें जब सब नर सो-सो कर,
कहें पिछली गाथा रो-रो कर,
अपना अस्तित्व मिटा करके,
वीरोचित शब्द कहा करता है।
कवि कब गीत लिखा करता है।

॥ ४ ॥

जब 'छैल' गया उसका सब सुख,
जनके हित वारा है सब कुछ।

वह उनको सुखी बना करके,
हँसता अरु दुःख सहा करता है।
कवि कब गीत लिखा करता है।

—:o:—

मेहमान उसी को कहते हैं

जो आजाए अपने घर में,
मेहमान उसी को कहते हैं।
और दूर खुराफातों से रहे,
इंसान उसी को कहते हैं॥

॥ १ ॥

दो जंग में रहे या जन्नत मां,
कावे में या फिर मैखाने मे,
हम जब भी मिलें वह प्यार करें,
पहचान उसी को कहते हैं।

॥ २ ॥

जब-जब आफत मुझ पर आती,
वह जान निछावर कर देते।

फिर भी कहते कुछ कर न सका,
अहसान उसी को कहते हैं।

॥ ३ ॥

जो उठता है तूफां बन के कभी,
और जाम सा रुक-रुक छलकता है।
मर मर कर भी जो नहीं मरता,
अरमान उसी को कहते हैं।

॥ ४ ॥

जो लाख खताएँ हमने कीं,
हर रोज अभी तक करते हैं।
इस पर भी जो 'छैल' करम बख्शे,
रहमान उसी को कहते हैं॥

—:o:—

आ जावो अब हे प्रिय बसन्त

इस ऋतु हिमन्त का वेग घटे,
अरु विरह व्यथा हो जाय अन्त।
आ जावो अब हे प्रिय बसन्त॥

॥ १ ॥

हों नव रसाल मंजिरत सकल,
बढ़ जाय उष्णता भी पल-पल।
नव किसलय वृक्ष सुशोभित हों,
अरु सुमन खिलें दिल में अनन्त।
आ जावो अब हे प्रिय बसन्त॥

॥ २ ॥

भर जाँय हृदय में नव उमंग,
पुलकित हो जावें अंग-अंग।
हों राग रंग से गुंजित दिशि,
नाचें शुचि पत्नी संग कंत।
आ जावो अब हे प्रिय बसन्त॥

॥ ३ ॥

भर जाय गगन कुम-कुम अबीर,
कंचन पिचकारी झरे नीर।
निज द्वेष 'छैल' सब नर भूलें,
अरु भरें प्रेम से सब दिगन्त॥
आ जावो अब हे प्रिय बसन्त॥

—:o:—

फिर भी कहते कुछ कर न सका,
अहसान उसी को कहते हैं।

॥ ३ ॥

जो उठता है तूफां वन के कभी,
और जाम सा रुक-रुक छलकता है।
मर मर कर भी जो नहीं मरता,
अरमान उसी को कहते हैं।

॥ ४ ॥

जो लाख खताएँ हमने कीं,
हर रोज अभी तक करते हैं।
इस पर भी जो 'छैल' करम वख्शे,
रहमान उसी को कहते हैं॥

—:o:—

आ जावो अब हे प्रिय बसन्त

इस ऋतु हिमन्त का वेग घटे,
अरु विरह व्यथा हो जाय अन्त।
आ जावो अव हे प्रिय वसन्त॥

॥ १ ॥

हों नव रसाल मंजिरत सकल,
बढ़ जाय उष्णता भी पल-पल।
नव किसलय वृक्ष सुशोभित हों,
अरु सुमन खिलें दिल में अनन्त।
आ जावो अब हे प्रिय बसन्त॥

॥ २ ॥

भर जांय हृदय में नव उमंग,
पुलकित हो जावें अंग-अंग।
हों राग रंग से गुंजित दिशि,
नाचें शुचि पत्नी संग कंत।
आ जावो अब हे प्रिय बसन्त॥

॥ ३ ॥

भर जाय गगन कुम-कुम अबीर,
कंचन पिचकारी भरे नीर।
निज द्वेष 'छैल' सब नर भूलें,
अरु भरें प्रेम से सब दिगन्त॥
आ जावो अब हे प्रिय बसन्त॥

—:o:—

घेर सब गोपिन टोल लियो री

घेर सब गोपिन टोल लियो री।
मुख मलहु लाल कियो री॥

॥ १ ॥

मोर पखा सिरमौर विराजत,
चन्दन खौर दिये री।
मारत तक-तक तन पिचकारी,
अब किहि बिधि बचियोरी॥

॥ २ ॥

अंक भरत चोरी मसकावत,
मानत नाँय हरि मेरी।
कर बहु विनय थकीं सुन सजनी,
चाहे चरन परियेरी॥

॥ ३ ॥

'रसिक छैल' रंग राते फिरत हैं,
मदिरा भंग पियेरी।
हँस मुसकात तोर दृग मारत,
सालत बीच हियेरी॥

नर काहे पै करत गुमान

देह नहीं धेला की,
नर काहे पै करत गुमान ।

॥ १ ॥

मेरी सब सभा सुनो दै कान,
कि जग की माया झूठी जान ।
लेऊ सब हान लाभ पहचान ॥

रोज सबेरे जगत में, उगै डूबै भान ।
तेरी हू काया छिपै, निकस जांय जब प्रान ॥

॥ २ ॥

निराले हैं सब यहां के ढंग,
देख कै मति होती है भंग ।
बदलता जगत अनोखे रंग ।

कोई भूकौ ही मरै, कोई राखै शान ।
अन्त दुहूं मरघट में, होय राख की खान ।

॥ ३ ॥

जब तक है तो पै यह रूप,
सभो तक मरते राजा भूप ।
अंत सब नसै रात ज्यों धूप ॥

या देही पर गर्व कर तजे हरी बलवान ।
कुकरम दिन दूने करै, पूजत भूत मसान ॥

॥ ४ ॥

हमारी मान जरा सी बात,
फिरै क्यों माया में इतरात।
कोई नहिं पकरै तेरा हात ॥

छोड़ लगाई झगड़नों, और अटकनी बात।
'रसिक छैल' प्रभु को भजो, तजो सकल अभिमान ॥

—:o:—

छोड़ क्यों चल दिये

छोड़ क्यों चल दिये, मेरी पकर बाँह भरतार ॥

॥ १ ॥

सदा हँस करे बहुत से चाव,
लगन नहीं दियो और को दाव।
रखी तैनें प्रेम प्रीत के भाव ॥

कबहू दुःख दियो नहीं, राखी न्याय छुपाय।
कौन चूक ऐसी परी, मोकूँ देऊ बताय ॥

निरमोही मत बनें बलम नेंक सीधे नैन निहार।
छोड़ क्यों चल दिये, मेरी पकर बांह भरतार॥

॥ २ ॥

हमारो नहीं जगत में कोय।
कि तुम बिन सब जग बैरी होय॥
मरूँगी रात दिनां बस रोय॥

मत छांड़ो विनती करूँ, लीजै संग लगाय।
तो बिछड़े बस अंत है, विरहा बदन जराय॥
जो चूक्यो तौ चारों ठगिया लिंगे मोय सम्हार।
छोड़ क्यों चल दिये, मेरी पकर बांह भरतार॥

॥ ३ ॥

कहूं परिगई ठगियन के हात,
लूट लें और जरायदें जात।
कि फिर पछताओ मल मल हात॥

मो सो फिर मिलनो नहीं यह लीजै चित धार।
'रसिक छैल' जग में बहुत लख चौरासी नार॥
आकें लेऊ सम्हार मेरे संग और भजो करतार।
छोड़ क्यों चल दिये, मेरी पकर बांह भरतार॥

—:o:—

झूलन को चालौ राधे वीर

झूलन को चालौ राधे वीर।
वंसी वाजत जमुना तीर॥

॥ १ ॥

वंसीवट के विन कुंजन में,
कान्हा होत अधीर।
इक इक पल तिहि युग सम बीतत,
काहे भई वेपीर॥

॥ २ ॥

प्रेम सने ये बैन सुनत ही,
नैनन छायौ नीर।
तन-मन की सब सुरत विसारी,
धाय मिलों वलवीर॥

॥ ३ ॥

'रसिक छैल' दोऊ झूला बैठे,
फेहरन लागे चीर।
श्यामा श्याम श्याम भयो श्यामा,
है गये एक शरीर॥

—:o:—

सखी धूम मची है अनोखी आज

॥ १ ॥

सखी धूम मची है,
अनोखी आज ।
सब साथ लिए,
होरी के साज ॥

॥ २ ॥

कर पिचकारी,
लिए गिरधारी ।
घतियन मारी,
कित जाऊँ भाज ॥

॥ ३ ॥

खेंचत सारी
न मानें अनारी ।
या लाज निगोरी,
पै परियो गाज ॥

॥ ४ ॥

ग्वालन टोली,
मलें मुख रोली ।
करत ठिठोली,
मानों या ही को राज ॥

॥ ५ ॥

गावत रसिया,
बन्यों रंग रसिया।
"रसिक छैल"
सिर सोहै ताज॥

—:o:—

साजन संग खेलूँ रंग होरी रे

साजन संग खेलूँ रंग होरी रे॥

॥ १ ॥

इत ठाड़े नन्दन जू के नन्दन।
उत गोकुल की गोरी रे॥

॥ २ ॥

लिए गुलाल लाल गलियन सों।
निकसत करत ठठोरी रे॥

॥ ३ ॥
अंक लगात कंचुकी तरकत।
अंचल गहि झकझोरी रे॥

॥ ४ ॥
रसिक छैल रँग-राते रसिया।
घेर लई तिन खोरी रे॥

× × ×

साजन संग खेलूं रंग होरी रे॥

—:o:—

कोऊ नहिं जानत दुःख हमारौ

कोऊ नहिं जानत दुःख हमारो॥

॥ १ ॥
दुःख हि दुःख नहीं सुख कबहू,
जब ते यह तन धारो।

॥ ५ ॥

गावत रसिया,
बन्यों रंग रसिया।
"रसिक छैल"
सिर सोहै ताज ॥

—:o:—

साजन संग खेलूँ रंग होरी रे

साजन संग खेलूँ रंग होरी रे ॥

॥ १ ॥

इत ठाड़े नन्दन जू के नन्दन।
उत गोकुल की गोरी रे ॥

॥ २ ॥

लिए गुलाल लाल गलियन सों।
निकसत करत ठठोरी रे ॥

॥ ३ ॥

अंक लगात कंचुकी तरकत।
अंचल गहि झकझोरी रे॥

॥ ४ ॥

रसिक छैल रँग-राते रसिया।
घेर लई तिन खोरी रे॥

× × ×

साजन संग खेलूं रंग होरी रे॥

—:o:—

कोऊ नहिं जानत दुःख हमारौ

कोऊ नहिं जानत दुःख हमारो॥

॥ १ ॥

दुःख हि दुःख नहीं सुख कबहू,
जब ते यह तन धारो।

॥ ५ ॥

गावत रसिया,
बन्यों रंग रसिया।
"रसिक छैल"
सिर सोहै ताज ॥

—:०:—

साजन संग खेलूँ रंग होरी रे

साजन संग खेलूँ रंग होरी रे ॥

॥ १ ॥

इत ठाड़े नन्दन जू के नन्दन।
उत गोकुल की गोरी रे ॥

॥ २ ॥

लिए गुलाल लाल गलियन सों।
निकसत करत ठठोरी रे ॥

॥ ३ ॥

अंक लगात कंचुकी तरकत।
अंचल गहि झकझोरी रे॥

॥ ४ ॥

रसिक छैल रंग-राते रसिया।
घेर लई तिन खोरी रे॥

× × ×

साजन संग खेलूं रंग होरी रे॥

—:o:—

कोऊ नहिं जानत दु:ख हमारौ

कोऊ नहिं जानत दु:ख हमारो॥

॥ १ ॥

दु:ख हि दु:ख नहीं सुख कबहू,
जब ते यह तन धारो।

रूठ गये हमरे वह प्रेमी,
जिनकौ हतौ सहारौ ॥

॥ २ ॥

खान-पान कछू नहि भावत,
राग रंग रस सारौ।
निर्दोषीन सतावत हैं सब,
प्रभु गह बाँह उवारौ ॥

॥ ३ ॥

रसिक छैल अब नहि हँस बोलत,
कछु नहि हिये विचारौ।
जब दिन आये हँस खेलन के,
तब कर गयौ किनारौ ॥
कोऊ नहि जानत दुःख हमारौ ॥

—:o:—

बरसन लागी ब्रज में भूमर-भूरी-भूरी

बरसन लागी जी महाराज,
ब्रज पर भूमर भूरी-भूरी।

॥ १ ॥

आँधी उठी जोरकर भारी,
चहुँ दिशि छाय गई अँधियारी।
उड़ गये छप्पर खम्भ अटारी,
चढ़ गई उन झांकन ते नूरी॥

॥ २ ॥

झीनी घटा घुमड़ घिर आई,
कुछ-कुछ दामिनि देत दिखाई।
बिन बरसाये वारि बिहाई,
रह गई सब की आश अधूरी॥

॥ ३ ॥

पशु अरु पक्षी प्यासे मारे,
सूखे वृक्ष बेल वन सारे।
करिये कृपा कामरी वारे,
होवें रसिक छैल दुःख दूरी॥

—:o:—

चपला चमक डरावै हिया

घन की गरज,
जिया जात लरज।
चपला चमक डरावै हिया ॥

॥ १ ॥

दादुर मोर पपीहरा बोलत;
भ्रमरावलि गुंजत वन डोलत।
संग की सहैली,
करैं हंस अठखेली ॥
हेली अज हू न आये पिया ॥

॥ २ ॥

'रसिक छैल' अस सोचत मन में,
विरहा की आग लगी सब तन में।
भूषन उतारैं,
पुनि गहि गहि डारैं।
डारैं असुआ नैंन तिया ॥
चपला चमक डरावै हिया ॥

समस्या पूर्ति - निचोरें

॥ १ ॥

चाहत नाहिन चम्प कली,
वित जो नितही सबके चित चोरें।
मानत मालति मोगर हू नहीं,
माधविका मधुसों मुख मोरें॥
आस फसे विसवास गसे,
निशि वासर 'छैल' बनें सब ओरें।
देखहु कंज कली कर संग,
अली तिनके रस आप निचोरें॥

॥ २ ॥

लालन होय लटू ललचात,
भटू बतरावत क्यों मुख मोरें।
देख दुरावत गात अली,
पति के हँसते दृग देखन दोरें॥
सीख सहेलिन की नहि मान,
कहें कछु 'छैल' चितै चहुं ओरें।
मैं बाल है यह कौन सुभाय,
बनी तिरछी अरु केश निचोरें॥

—:o:—

चपला चमक डरावै हिया

घन की गरज,
जिया जात लरज।
चपला चमक डरावै हिया॥

॥ १ ॥
दादुर मोर पपीहरा बोलत;
भ्रमरावलि गुंजत वन डोलत।
संग की सहेली,
करैं हंस अठखेली॥
हेली अज हू न आये पिया॥

॥ २ ॥
'रसिक छैल' अस सोचत मन में,
विरहा की आग लगी सब तन में।
भूषन उतारै,
पुनि गहि गहि डारै।
डारै असुआ नैंन तिया॥
चपला चमक डरावै हिया॥

—:o:—

समस्या पूर्ति - निचोरें

॥ १ ॥

चाहत नाहिन चम्प कली,
वित जो नितही सबके चित चोरें।
मानत मालति मोगर हू नहीं,
माधविका मधुसों मुख मोरें॥
आस कसे विसवास गसे,
निशि वासर 'छैल' बनें सव ओरें।
देखहु कंज कली कर संग,
अली तिनके रस आप निचोरें॥

॥ २ ॥

लालन होय लटू ललचात,
भटू बतरावत क्यों मुख मोरें।
देख दुरावत गात अली,
पति के हँसते हग देखन दोरें॥
सीख सहेलिन की नहि मान,
कहुँ कछु 'छैल' चितै चहुं ओरें।
में बाल है यह कौन सुभाय,
बनी तिरछी अरु केश निचोरें॥

—:o:—



कवित्त खण्ड

श्रीकृष्ण लीला वर्णन
संयोग श्रृंगार
विप्रलम्भ श्रृंगार
होली
ऋतु वर्णन
विविध

श्री कृष्ण-लीला वर्णन

॥ १ ॥

कूद्यो कान्ह जमुना में पलको न कीनो देर,
तारन को भक्त निज करत खिलूरियां।
"रसिक छैल" सुनत आवज धायो काली छूनो,
युद्ध ते करन लाग्यो जोर भर पूरियां॥
हार्‌यो नागराज पै न बांध सको ब्रजराज,
गहिमुख तोर दई जाकी दँतुरियां।
नाचै संग ताल दोनों वृज में थनै नाथ लाल,
मटकें सरोज नैन लटकें लटूरियां॥

॥ २ ॥

देख कें उछाह वृज वासिन को बारे कान्ह,
जाय जसुधा के ढिग हंस-हंस बूझते।
कौन उत्सव है ? सुन नन्दरानी बोलीं फेर,
इन्द्र को पुजायो काहे तोहि नहिं सूझते॥
सुनि मुसिक्याय बोले तुम सब बौरे भये,
छोड़ जड़ पीढ पुनि पत्तन सों जूझते।
"रसिक छैल" गिरि को चढ़ाओ ये भेंट भोग,
छांड़ि कें त्रिलोकी नाथ काहे इन्द्र पूजते॥

॥ ३ ॥

दई है छुड़ाय पूजा इन्द्र को अनोखे लाल,
भोले वृज वासिन सों गिर्राज कूं पुजायो है।

बीन कौं बजाय ब्रह्म सुत नैं खबर दीनी,
सुनिकैं संदेसौ मन अधिक रिसायौ है॥
"रसिक छैल" लीने बुलाय कैं प्रलय मेघ,
बृज कौं डुबाओ ऐसौ हुकम सुनायौ है।
बूड़त निहारे गाय, गोपी गोप ग्वाल बाल,
हंसि के गोपाल गिरि कर पै उठायौ है॥

॥ ४ ॥

उमड़ घुमड़ कै घन चाले हैं श्वेत श्याम,
प्रलय की घटा आज सारौ बृज घिरगौ।
हुकम दियौ है कृष्ण आपने सुदर्शन कौं,
लैकैं तप तेज सोइ बीच में बिफरगौ॥
बरसत हारे एक बूंद नांहि नीचे परी,
रीतौ मेघ हार कैं पलट पट फिरगौ।
"रसिक छैल" कर जोर चाल्यौ है देवराज,
त्राहि त्राहि त्राहि कहि पांव आप गिरगौ॥

॥ ५ ॥

भोर भये गोरस ले चाली है नवेली बाल,
मग में मिल्यौ है कान्ह जानैं घट घट की।
कही कर जोर भान दै जा तू दही कौ दान,
नाही कर चाली ही सखियन सौं मटकी॥

फेंट सों निकार कें बजाई है सम्हार सुर,
'रसिक छैल' बन्सी की तान कान खटकी।
वटि को हू भूलि सुधि पटकी रही ना नेंक,
फूटी सिर मटकी सो फेंसी आइ अटकी ॥

॥ ६ ॥

सुनत ही तान कान बावरी भई हैं सब,
भूली खान-पान कोऊ आँगन परी रहै।
तात-मात त्यागे कुल कान हू बिसार दई,
छूटे घट पट प्रीत हिय में भरी रहै ॥
कैसी निर्मोहिन नें ब्रज वनिता मोहि लई,
जोवन को नाश करै चुप्प ना धरी रहै।
'रसिक छैल' बाँसकी नें बाकी कछु छोड़यो ना,
बाँसुरी निगोड़ी तोऊ अधर धरी रहै ॥

॥ ७ ॥

तकत रहे हो तुम औसर लड़ैते लाल,
आज भये पूरन सो तेरे मन भाये हैं।
नर और नारी देख कारी बरसारी रैन,
छाँड़ि काम काज निज गृहन सिधाये हैं ॥
"रसिक छैल" ऐसो ना बनेगो बनौआ फेर,
करकें सिंगार पुनि पुलक बुलाये हैं।

कुंजन पधारी निज प्यारी के मिलन हेतु,
केतौ घनश्याम घन श्याम झर लाये हैं ॥

॥ ८ ॥

झूलत निहारे मोहन प्यारी नैं नैनन ते,
छूट गयौ खान-पान नोकौ धन-धाम है।
रह्यौ नाहिं नेह काहू आपने पराये संग,
चित्र सी निहारै ठाड़ी काहू ते न काम है ॥
जाकी लखि शोभा कौं मयंक हू लजात आली,
"रसिक छैल" सोहू विकानी विनदाम है।
आप तन लखै श्याम सखी कौं लखावै श्याम,
ऐसी भई वौरी लखै पात-पात श्याम है ॥

॥ ९ ॥

फिरते मद जोवन में औ हिये,
तरफाते अनेक विचारन के।
यद्वि "छैल" न लेते सुदान कभू,
विन कुंजन और पहारन के ॥
कटि में बांसुरी हँसते कर क्यों,
फंसते हम ग्वारि-गॅवारन के।
अलि जो कहुं होते लला ये ललि,
तौ गरे कट जाते हजारन के ॥

॥ १० ॥

हँसत हिय में हरसाते घने,
दमकाते वु हीरन हारन के।
सिर सारी सुरंग सजाते भली,
जिहि में बहु पुंज सितारन के॥
द्रग तीर चलाते सु 'छैल' घने,
करते बहु काट नगारन के।
अलि जो कहुं होते लला ये सली,
तो गरे कट जाते हजारन के॥

॥ ११ ॥

भाई भली सी भोरी भामिनी की चितौन ऐसी,
तज्यो निजगेह गुन गरिमा गमाई है।
छाई है छवीली छवि नैनन 'रसिक छैल'
छांड़ि राग रंग रज अंगन रमाई है॥
मार-मार तीर द्रग-कोरन अनंग कैसे,
कीने हैं जर-जर ज्योति जोवन जगाई है।
हरे-हरे होटन में हंसन लुभानी हिय,
सांवरी सलौनो सुचि मूरत समाई है॥

॥ १२ ॥

मह भूमि वही जहं कृष्ण भये।
कर कौतुक ते मन मोद दये।

सुख सम्पति सौं सब देश छये,
सब गावत प्रीत सुगीत नये ।।
तिन दुष्ट पुकार पछार दिये,
विपतान सु भक्त उबार दिये ।
विगड़े सब काज सुधार दिये,
अरु दान हजार - हजार दिये ।।

—:o:—

शृंगार (संयोग)

।। १ ।।

देखी नारि लाल पट ओढ़ें एक गांम मांहि,
अति ही प्रवीन निज जोवन सम्हार में ।
कटि अति छीन और उरज कठोर गोल,
सुन्दर वदन चन्द्र ऊग्यौ ज्यों पहार में ।।
"रसिक छैल" जादू है टौना है कि मंत्र जंत्र,
भूल्यौ राग रंग जब कीनी आँख चार में ।
एक पग चली, ढुकी फिर अंगड़ाई लई,
हंसि हिय लै गई हमारौ गस हार में ।।

॥ २ ॥

यौवन संभार एक तिय चली प्यारे पास,
किंकिण हू बाजे ज्यों धनुष टनकार हैं।

भौहें कमान बनों नैन दीर्घ खड्ग सम,
ठंडी लै उसास जैसे तीर सनकार हैं॥

कटि अति छीन और उरज कठोर ताके,
नीकी मुसकान ज्यों विद्युत चनकार हैं।

"रसिक छैल" प्यारी के रूप रंग मंच मानो,
काम के जगाने को नूपुर झनकार हैं॥

॥ ३ ॥

भोरहिं चली नीर भरिबे सुगगरिया लै,
संग सखिया न सों जमुना के तट गई।

देख्यो नयन दूत ताहिं कृष्ण कान्ह प्यारे को,
कटि के बहानों नेक पीछे कूं डट गई॥

दैके कर कागद कह्यो कुबजा सों प्रीति भई,
भूले हैं नाथ प्रीत तुम सों क्यों घटि गई।

तीखे सुन बैन नैन अंसुआ हू भरि आये,
पाती कहा बांचो प्यारी छाती सी फटि गई॥

॥ ४ ॥

मिलन हेत आशा लता फूली सुग गौने की,
चर्चा लगत मीठी ज्यों दूध कंद मेल्यौ है।
लामत में घूंघट उघार कही आनंद सों,
तोय मिलन हेत मैं बहुत दुःख झेल्यौ है॥
'रसिक छैल' पूजे कुल देवी औ देव सब,
आधी रात बीते भाभी गृह में ढकेल्यौ है।
पहिले सिंगार पाछै नखरे में भोर भयौ,
सारी रात पीस्यौ और पारी में सकेल्यौ है॥

॥ ५ ॥

सरकी भाल बिंदी नैंन फैसें उनीदे आज,
क्षत हैं कपोल बढ़ी लालिमा अधर की।
धरकी है छाती कुच कोर कढ़ी आंगी खुली,
कंपत है गात मेंहदी छूटी क्यों करकी॥
करकी हरी चूरी फिरैं अति घबरानी सी,
ढीले श्रृंगार सेज साजी किन सुघर की।
घरकी ना सुधि-बुधि रही है 'रसिक छैल'
रात कहां जागी लट खूट गई सरकी॥

॥ ६ ॥

सखिन सन राधा सुनाये गरबीले बैन,
काहे नहीं कारौ बांध लाओ प्रेम डोर में।

साज चतुरंगी सैन अब ही सिधाओ आली,
कीजिये गरूर चूर जोवन झकोर में ॥
"रसिक छैल" गोला कुच धौंसा नितम्ब जानि,
कीनो मतिकार लाल आई जान जोर में।
नैनन के बान ओर भ्रकुटी कमान तान,
कीनो कान्ह घायल एक तीखी मरोर में ॥

॥ ७ ॥

हाँसी मुसकाय कही काहे तुम आई जुर,
नाहीं अपराधी कैंधों जान्यों तुम चोर में।
बाँध बो न सीधो जाओ लौट घर अपने कों,
गृह काज त्याग रार कीनो उठ भोर में ॥
"रसिक छैल" मोकों न, जीतोगी नबेली बाल,
प्रेम फला बाँधी निज पटका के छोर में।
माया तेज वारी जपें जिन्हें त्रिपुरारी आदि,
दासी हैं हमारी फिरी जिनकी मरोर में ॥

॥ ८ ॥

शीतल समीर चालै चन्दन विजन हालै,
कंठ बीच मुक्त मालै टाटी नये खसकी।
वरफ को पानी पुष्प सेज सुख दानी अति,
दासी हू सुलानी करें बातें प्रेम जस की ॥

'रसिक छैल' गंधन सुवासित भई गैल,
ऊँचे महल तिनपै ज्योत खिली रस की।
कटत हैं अपार दुःख तिनके सुनो यार,
ऐते हौं साज सुघड़ नार भरी रस की॥

॥ ९ ॥

भोरहि दान मांगे है गोरस को बाट बीच,
करे झक झोरी नित्य आमत औ जात में।
मटकी कौं डार और चूंदर रंगीली फार,
धमकी हूँ देत है अनोखी बात-बात में,
"रसिक छैल" भोरी वृज गोरी के भौन मांहि,
की चोरी वर जोरी करे माखन के खात में।
कारे कृष्ण प्यारे नैंन तारे मतवारे 'छैल'
तोर डारे तारे सारे तारे भरी रात में॥

॥ १० ॥

लागे ना औसर बहु चौसर की चाल चलीं,
देख अंधियारी फिरत प्यारी की घात में।
"रसिक छैल' छाती लिपटाई अकेली देख,
सोई ही अटारी मलें चन्दन सुगात में॥
चूमें अधर-अधर कटि सों किलोल करीं,
खोल कंचुकी कौं कुच दावे हंस हाथ में।

ऐसे रीति [illegible],
[illegible] है ॥

॥ ११ ॥

कुंजन कलाओं के चिलोको कहूं बात एक,
न्हान कों गई हो कोउ कलिंदजा के तट पै।
बन में मिल्यो हो एक स्याम अलबेलो छैल,
छोहरा अनोखो जो रहो हो वाहि वट पै॥
'रसिक छैल' ढारो जो वाहि रूप रावे रपू,
अंक में कपोल धाय लीनो हेत लटकी।
मद के निशंक अंक भूमि पै पधारो आन,
कहो सखि वाको मो सो कौन ओट अटकी॥

॥ १२ ॥

नवला घर प्रीतम आइ गई,
पति देख भई सटका सटकी।
तिहि रात बिछी सिजिया पु सखी,
रस रीत भयी झटका झटकी.
सकुची लचकी उरपी सिसकी,
पुनि छूट गये पटका पटकी।
जब घूंघट छूट मिली अखियां,
तब होन लगी अटका [illegible]ी॥

'रसिक छैल' गंधन सुवासित भई गैल,
ऊँचे महल तिनपै ज्योत खिली रस की।
कटत हैं अपार दुःख तिनके सुनो यार,
ऐते हौं साज सुघड़ नार भरी रस की॥

॥ ९ ॥

भोरहि दान मांगै है गोरस को बाट बीच,
करै झक झोरी नित्य आमत औ जात में।
मटकी कों डार और चूंदर रंगीली फार,
धमकी हूँ देत है अनोखी बात-बात में,
"रसिक छैल" भोरी वृज गोरी के भौन मांहि,
की चोरी वर जोरी करै माखन के खात में।
कारे कृष्ण प्यारे नैंन तारे मतवारे 'छैल'
तोर डारे तारे सारे तारे भरी रात में॥

॥ १० ॥

लागै ना औसर बहु चौसर की चाल चलीं,
देख अंधियारी फिरत प्यारी की घात में।
"रसिक छैल' छाती लिपटाई अकेली देख,
सोई ही अटारी मलैं चन्दन सुगात में॥
चूमें अधर-अधर कटि सों किलोल करीं,
खोल कंचुकी कों कुच दाबे हंस हाथ में।

प्रेम रति न्यारे छये नेन रतनारे भये,
रंग रस रति रचे तारे भरी रात में ॥

॥ ११ ॥

पूछत बताओ मैं विलोकी नई बात एक,
न्हान कों गई ही संग सखियन सों भटकी।
बन में मिल्यो हो एक श्याम अलबेलो छैल,
छोहरा अनोखो जो ठाडो हो छांह वटकी ॥
'रसिक छैल' धायो औ गहि कुच दाबे कछु,
दंत में कपोल दाब लीयो हंस झटकी।
भर कैं निशंक अंक भूमि पैं पछारी आन,
कहो सखि वाको मो सों कौन ओंट अटको ॥

॥ १२ ॥

नवला घर प्रीतम आइ गई,
पति देख भई सटका सटकी।
तिहि रात बिछों सिजिया सु अटा,
रस रीत मचों झटका झटकी,
सकुची लचकी उरपी झिझकी,
पुनि छूट गये पटका पटकी।
जब घूंघट खूट मिली अंखियां,
तब होंन लगी अटका अटकी ॥

॥ १३ ॥

फूले उत सूर्य मुखी इत शीश फूल माथे,
उत गूजें भौंरा ह्यां काजर अँखियान में।

फूले उत चम्पा इत चम्प कली सोहि रही,
उत फूले गेंदा इत कुच अंगियान में॥

उत में गुलाब सब फूलन में प्यारो लगै,
इतमें नवेली राजै संग सखियान में।

"रसिक छैल" फूल रही दोनों ही जोवन पैं।
फूली है नवेली वेली नीकी बगिया न में॥

॥ १४ ॥

छोटे से मुख से कछू तोतली सी बात कहे,
निकट जो बुलावें तो आप भजे दूरियाँ।

कौतुक नवीने करें मन बीच मोद भरें,
माता-पिता को रहत प्रेम परि पूरियाँ॥

"रसिक छैल" होवे जो कबहू मलीन मन,
करदे प्रसन्न कर करकें खिलूरियाँ।

प्यारो लगै है खेलै बीच महलन के,
ताकै मटकें सरोज नैन लटकें लटूरियाँ॥

॥ १५ ॥

भवन हमारे एक आई ही मयंक मुखी,
हिय उमगानो ज्यों कमल खिले भोर में।

'रसिक छैल' रति हू भुलानी लखत ताहि,
प्रीत बढ़ी हमरी ज्यों चन्द्रमा चकोर में॥

लोंनी लुभानी लट लटकत लजीली पीठ,
जोवन झकोरे खात मदन मरोर में।

देख हरियाली भली मन मृग जाय फंस्यो,
कारे कजरारे मतवारे न की कोर में॥

॥ १६ ॥

शोभा बीजुरी सी अर्द्ध चन्द्र सो स्वरूप ता को,
नाचो सुख सेजु करे मदंन को हार है।

लफ लफ नागिन सी पलटून चैन परें,
जाको हंस हरें ताको हृदय विदार है॥

'रसिक छैल' नाहीं बढ़े है मान मानि न के,
ऐसी करें चोट कोऊ शब्द ना उचार है।

जाके तन लागें ताको नाश कर डारत है,
नथली अनोखी ओर शीश पर वार है॥

॥ १७ ॥

केश शिर सोहत ज्यों कारी घटा घिरि आई,
इन्द्र धनु भौंह नैंन मीन अनियारी के।

बेन कोकिला से दंत विद्युत से राज रहे,
भूषण हू चमकें ज्यों दीप अँधियारी के।

"रसिक छैल" प्यारे की आमन की आश लगी,
आँसू ढरका वे झर लाये वर सारी के।

नूपुर को शब्द मानों झींगर झिगार भई,
वर्षा सम अंग लसैं प्यारी मतवारी के॥

॥ १८ ॥

हँसत नवेली करि भौंह बंक धनु जैसी,
बिन्दी ललाट सोहत भानु जिमि भोर में।

सुन्दर नितम्ब अरु कटि अति छीन बनी,
कुचन विकास आंगी दरकै है जोर में॥

'रसिक छैल' गैल गैल ह्वैं है बड़ाई ताकी,
डोलें इतराती नित जोवन मरोर में।

घूँघट की ओट चोट करत सरोज मुखी,
लाखों तेज तीर छुपे नैंनन की कोर में॥

॥ १६ ॥

ऐसी मदमाती काहे व्यर्थ इतराती मन,
डोले इठलाती चित्त फूली ना समाती है।
गागर झुलाती बीच बाट बतराती हँस,
घूँघट छुपाती मुख पलना झुलाती है॥
'छैल' छवि छाती जित देखत लुभाती जन,
जरनि जलाती आग हिय में लगाती है।
करले विचार सब मान महि डार नैक,
पावन पखार नीर बहता सुपाती है॥

॥ २० ॥

नवला निकसी निरखैं नगरी,
रंग रूप सजी रस रीत रली।
हँस हरे कही हरसाय हरी,
भ्रम सों भटकी भई भेट भली॥
दधि दान दऊँ दुगनों दिन द्वै,
किमि घेरत गाँव गुपाल गली।
छवि 'छैल' छले छल सों छिटकी,
चट चित चितोनतन चोर चली॥

॥ १७ ॥

केश शिर सोहत ज्यों कारो घटा घिरि आई,
इन्द्र धनु भौंह नैंन मीन अनियारी के।

बेन कोकिला से दंत विद्युत से राज रहे,
भूषण हू चमकें ज्यों दीप अँधियारी के।

"रसिक छैंल" प्यारे की आमन की आश लगी,
आँसू ढरका वे झर लाये वर सारी के।

नूपुर को शब्द मानों झींगर झिंगार भई,
वर्षा सम अंग लसैं प्यारी मतवारी के॥

॥ १८ ॥

हँसत नवेली करि भौंह बंक धनु जैसी,
बिन्दी ललाट सोहत भानु जिमि भोर में।

सुन्दर नितम्ब अरु कटि अति छीन बनी,
कुचन विकास आंगी दरकैं है जोर में॥

'रसिक छैंल' गैल गैल ह्वैं है बड़ाई ताकी,
डोलें इतराती नित जोवन मरोर में।

घूँघट की ओट चोट करत सरोज मुखी,
लाखों तेज तीर छुपे नैंनन की कोर में॥

॥ १६ ॥

ऐसी मदमाती काहे व्यर्थ इतराती मन,
डोलें इठलाती चित्त फूली ना समानी है।
गागर झुलाती बीच बाट बतराती हँस,
घूँघट छुपाती मुख पलना झुलानी है॥
'छैल' छवि छाती जित देखत सुमाती जन,
जरिन जलाती आग हिय में लगानी है।
करलें विचार सब मान महि डार नैक,
पावन पखार नीर बहता सुपानी है॥

॥ २० ॥

नवला निकसी निरखें नगरी,
रंग रूप सजी रस रीत रली।
हंस हरे कही हरसाय हरी,
भ्रम सों भटकी भई भेंट भली॥
दधि दान दऊँ दुगनों दिन है,
किमि घेरत गांव गुपाल गली।
छवि 'छैल' छलै छल सों छिटकी,
चट चित चितोननन चोर चली॥

॥ १७ ॥

केश शिर सोहत ज्यों कारो घटा घिरि आई,
इन्द्र धनु भौंह नैंन मीन अनियारी के।

बेन कोकिला से दंत विद्युत से राज रहे,
भूषण हू चमकें ज्यों दीप अँधियारी के।

"रसिक छैल" प्यारे की आमन की आश लगी,
आँसू ढरका वे झर लाये वर सारी के।

नूपुर को शब्द मानों झींगर झिंगार भई,
वर्षा सम अंग लसैं प्यारी मतवारी के॥

॥ १८ ॥

हँसत नवेली करि भौंह वंक धनु जैसी,
विन्दी ललाट सोहत भानु जिमि भोर में।

सुन्दर नितम्ब अरु कटि अति छीन बनी,
कुचन विकास आंगी दरकें है जोर में॥

'रसिक छैल' गैल गैल ह्वें है बड़ाई ताकी,
डोलें इतराती नित जोवन मरोर में।

घूंघट की ओट चोट करत सरोज मुखी,
लाखों तेज तीर छुपे नैंनन की कोर में॥

॥ १६ ॥

ऐसी मदमाती काहे व्यर्थ इतराती मन,
डोले इठलाती चित्त फूलो ना समानी है।

गागर झुलाती बीच बाट बतराती हँस,
घूँघट छुपाती मुख पलना झुलानी है॥

'छैल' छवि छाती जित देखत लुभाती जन,
जरिन जलाती आग हिय में लगानी है।

करलें विचार सब मान महि डार नैक,
पावन पखार नीर बहता सुपानी है॥

॥ २० ॥

नवला निकसी निरखैं नगरी,
रंग रूप सजी रस रीत रली।

हंस हरे कही हरसाय हरी,
भ्रम सौं मटकी भई भेट भली॥

दधि दान दऊँ दुगनों दिन द्वै,
किमि घेरत गाँव गुपाल गली।

छवि 'छैल' छलै छल सौं छिटकी,
चट चित चितौनन चोर चली॥

॥ २१ ॥

मेरे शर मार्‌यो सर मदन मदान्ध ह्वैकैं,
वाही को विलोकों जिते वौरी दृष्टि आवती।

सारी कोर सारी को सम्हारी सुमनान स्वच्छ,
गोरी गात वारी नित अंगन संजावती॥

वीना गहि पान वीन वारी को लजाय रही,
रोकत बटोही बट बट में बजावती।

वारी बीच वारी लखी नासिका में वारी भली,
चाल मतवारी वारी गज कौ लजावती॥

॥ २२ ॥

तापस कुमारी निज प्यारी सखियान संग,
विहँस उचारी निज छल उठाओ री।

सखिन सिधारी फुलवारी देख शोभा भारी,
देख डरी भौंरा टेरी सखी इत अओ री॥

लेकर सुगन्ध अन्ध भूल्यौ है पराग निस,
करै अति तंग याते आनकें बचाओ री।

'रसिक छैल' सुख कंज कानन चहैं आली,
कोई दुखदाई पै मधुकर हटाओ री॥

॥ २३ ॥

चंचल चितौन सौं चटाक चित्त चोर-चोर,
चन्द्रमुखी चोक्खो चन्द्रहास सो चलावती।
हेर-हेर हंसन सु हियरा हिरावं हाय,
हटकं हटीलो हाय होटन हलावती॥
"रसिक छैल" राजै रंगीली रली रूप राशि,
रीझे रिझवारत को रोकत रुलावती।
जग जग जोति जुरी जोवन के जोर जाकी,
जर-जर कीन्हो जग जरिन जलावती॥

॥ २४ ॥

द्वितीया को चन्द्र कैंधों तम के पर्यो है पालें,
कैंधों छैल नाग जीभ सुधा फूं निकारो है।
कैंधों प्रेम तोलिबो को डांडी सी बनाई विधि,
कैंधों राहु पर कोपि चन्द्र चोट मारी हैं॥
कैंधों रतिकाम दोऊ झगरे हैं सेज माँहि,
बांट सुख भूमि हैम सीमा बीच डारी है।
कैंधों बाहें चन्द्रिका की धारा चली शोभ,
कैंधों माँग सुन्दरी की सखिन सम्हारी हैं॥

॥ २५ ॥

संग भाग सुहाग भरी ललना,
हुलसी हिय रागन गायौ करैं।
हँस "छैल" सु घूंघट के पट में,
चख चंचल चारु चलायौ करैं॥
उझकैं झिझकैं झहराय झुकैं,
निज प्रेमिन कौ मन भायौ करैं।
पिय के मुख कंज पैं मोहित ह्वै,
भ्रमरावलि सौ मडरायौ करैं॥

॥ २६ ॥

हँस हुलसी सी जो समाती थी हमारे हिय,
हटक हटीली विन को मन हिरावै गौ।
"रसिक छैल" रंगन रंगी वा रंगीली विन,
रति की परिपाटी की रीति में रलावै गौ॥
जग-जग रातन में जंघन में जंघ लाय,
जग-मग जोवन के जोर को जगावै गौ।
धार कर पानन ने पान को खवावै आली,
प्यारी विन प्रानन की पीर को मिटावै गौ॥

॥ २७ ॥

आई अलबेली ओ नवेली सो हवेली माँहि,
भन उरझानो ता मराल की सी चाल पं।

देखो व्रजगोरी वो किशोरी रस रंग बाको,
भृकुटो कमान तनी आनन विशाल पं॥

"रसिक छैल" रावरे के रोरी सुरंग हुकी,
लाल-लाल लागो बूँद चन्दन के जाल पं।

तों ने ओ न कोने मनों नैमन के बानन के।
लालन की चोट नन्द लालम के भाल पं॥

॥ २८ ॥

चन्द्र मुखी के चोखे कारे यह चपल दोनों,
चंचल चुटोले चारु चाहत चित चोते री।

जोवन के जोरन जगी है जोत जाकी हाय,
जुगुनू से जगमगाय जतो मन जीते री॥

बावरी विरहनी के बार-बार बारि ढरैं,
बादर वजमारे चोर बरसत बीते री।

राधिक-रसीली के ये दृग रतनारे "छैल"
रोम-रोम रैन दिवस रीझे भये रीते री॥

॥ २५ ॥

संग भाग सुहाग भरी ललना,
हुलसी हिय रागन गायौ करैं।
हँस "छैल" सु घूंघट के पट में,
चख चंचल चारु चलायौ करैं॥
उझकै झिझकै झहराय झुकै,
निज प्रेमिन कौ मन भायौ करैं।
पिय के मुख कंज पै मोहित ह्वै,
भ्रमरावलि सी मडरायौ करैं॥

॥ २६ ॥

हँस हुलसी सी जो समाती थी हमारे हिय,
हटक हटीली विन को मन हिरावै गौ।
"रसिक छैल" रंगन रंगी वा रंगीली विन,
रति की परिपाटी को रीति में रलावै गौ॥
जग-जग रातन में जंघन में जंघ लाय,
जग-मग जोवन के जोर को जगावै गौ।
धार कर पानन ने पान को खवावै आली,
प्यारी विन प्रानन की पीर को मिटावैं गौ॥

॥ २७ ॥

आई अलबेली ओ नवेली सो हवेली माँहि,
मन उरझानो ता मराल की सी चाल पै।

देखी व्रजगोरी वो किशोरी रस रंग बाको,
भृकुटी कमान तनी आनन विशाल पै॥

"रसिक छैल" रावरे कैं रोरी सुरंग हुकी,
लाल-लाल लागी बूँद चन्दन के जाल पै।

तौं ने ओ न कीने मनौं नैनन के बानन के।
लालन की चोट नन्द लालम के भाल पै॥

॥ २८ ॥

चन्द्र मुखी के चोखे कारे यह चपल दोनौं,
चंचल चुटीले चारु चाहत चित चीते री।

जोवन के जोरन जगी है जोत जाकी हाय,
जुगुनू से जगमगाय जती मन जीते री॥

बाबरी विरहनी के बार-बार बारि ढरें,
बादर बजमारे और बरसत बीते री।

राधिक-रसीली के ये दृग रतनारे "छैल"
रोम-रोम रैन दिवस रीझे भये रीते री॥

॥ २५ ॥

संग भाग सुहाग भरी ललना,
हुलसी हिय रागन गायौ करैं।
हँस "छैल" सु घूंघट के पट में,
चख चंचल चारु चलायौ करैं॥
उझकैं झिझकैं झहराय झुकैं,
निज प्रेमिन कौ मन भायौ करैं।
पिय के मुख कंज पै मोहित ह्वै,
भ्रमरावलि सी मडरायौ करैं॥

॥ २६ ॥

हँस हुलसी सी जो समाती थी हमारे हिय,
हटक हटीली विन को मन हिरावै गौ।
"रसिक छैल" रंगन रंगी वा रंगीली विन,
रति की परिपाटी को रीति में रलावै गौ॥
जग-जग रातन में जंघन में जंघ लाय,
जग-मग जोवन के जोर को जगावै गौ।
धार कर पानन ने पान को खबावै आली,
प्यारी विन प्रानन की पीर को मिटावै गौ॥

॥ २७ ॥

आई अलबेली औ नवेली सो हवेली माँहि,
मन ढरझानो ता मराल की सी चाल पै।

देखी व्रजगोरी वो किशोरी रस रंग बाळी,
भृकुटी कमान तनी आनन विशाल पै॥

"रसिक छैल" रावरे के रोरी सुरंग हुती,
लाल-लाल लागी बूंद चन्दन के जाल पै।

तौं ने औ न कीने मनों नैनन के बानन के।
लालन की चोट नन्द लालम के भाल पै॥

॥ २८ ॥

चन्द्र मुखी के चोखे कारे यह चपल दोनों,
चंचल चटीले चार चाहत चित चोते री।

जोबन के जोरन जगो है जोत जाकी हाय,
जुगुनू से जगमगाय जती मन जोते री॥

बावरी विरहनी के बार-बार बारि ढरें,
बादर बजमारे और बरसत बोते री।

राधिक-रसीली के ये दृग रतनारे "छैल"
रोम-रोम रैन दिवस रीझे भये रोते री॥

॥ २६ ॥

गहि अंक निशंक नई नवला,
कर खैंच लई चुनरी सरकी।
लख गोल उरोज ललाहुलसें,
उत में तिय की छतियां धरकी ॥
जुग जंघ गही द्रग नीर वह्यौ,
मनु मोतिन माल खसी लरकी।
मन छैल हटी चुटकी मटकी,
झटलै फिरकी सिसकी सरकी ॥

—:o:—

श्रृंगार (विप्रलम्भ)

॥ १ ॥

सब बीत गई रस की रतियां,
मग मोहन मूरत ही मुख की।

वट बागन बाखर बारिन तें,
मन मौज करों सगरे सुख को ॥

तब आंखन आंखन चाहत हों,
अब आस टरी उनके सुख को।

मन 'छैल' नहीं पल रैन परें,
कछु पार नहीं हमरे दु:ख को ॥

॥ २ ॥

उड़ जात नींद सूनी सेज नांहि नीको लगे,
सिर को ना दर्द जात काई खसबोई सों।

धीरता रहै नां अरु वीरता रहै नां नेक,
ध्यान हट जात तीखी सेल औ सिरोही सों ॥

"रसिक छैल" कैसी द्विविधा में पड्यो है मन,
चित्त ना लगत काहू जग की हंसी हो सों।

छूट जात खान-पान कछु नां सुहात तब,
मन लग जात जब काहू निरमोही सों ॥

॥ ३ ॥

सगरे जग के पुनि हेरि करें,
मन सुक्ख सदां चित्त सों सटक्यो है।

नहि बात कछु कहि वे सजनी,
अब संग सखा सबही बिछुट्यो है ॥

बिन तो नहि और कछू जग में,
हमरो जियरा तुम सों अट्क्यो है।

सब लोग भलें पगिया पलटैं,
हमनें तुमसों जियरा पलट्यो है ॥

॥ ४ ॥

हरसैं कहियो विनती हमरी,
सब अंग जरै विरहा झरसैं

झरसैं इत मेघ छये दुखिया,
मन छैल न प्रीत करैं परसैं ॥

परसैं मन मूरत को तुमरी,
इक नेह लहैं अपने बरसैं।

बरसैं कब प्रेम घटा हम पै,
लग अंक हँसै जिय में हरसैं ॥

॥ ५ ॥

ए री मेरी प्यारी छाँड़ो कोरी कोरी बातें सारी,
तेरे नाहि देखे फीको लागै खानों-पीनों री।

छाती पीटें डारूँ रोऊँ चैना हूँ ना पाऊँ बोरी,
सांसें खेंचूं ठंठी कैसो जादू तैने कीनों री ॥

पाछे की [illegible] भली प्रीती टेढ़ी-टेढ़ी बोलें-चालें,
कैसी पीरा दीनी काहे मेरो हिया छीनों री ।

कीयें जाओ घातें और खोये जाओ नीकी रातें,
माखें 'छैल' जौलों मोकों जीनों तौलों सीनों री ॥

॥ ६ ॥

परत न फल इन अंखियन तुम बिन,
सिसकत रहत न हंटखत इक छन ।

बरसत फिरत सुपरसन निश दिन,
बिरह अगन दहकत मम सब तन ॥

सुमन खिलत चल पवन सनन सन,
बहुत दुखित यह रितु पति लख मन ।

मत सकचहु हँस जग कर पकरत,
उठहु चलहु रिस तजहु रसिक अन ॥

॥ ७ ॥

कज्जल कलित दृगन ही में आँसू फिरें,
पहरे मनों सफरी कलिन्दी धार कारी है ।

कौन सौं मरम कहै परम लजीली बात,
मौन तपसी सो खड़ी मौन पै निहारी है ॥

जा दिन ते बात सुनी प्रेमी के गमन वारी,
ता दिन ते सुधि खान-पान की बिसारी है।

भूषण सिंगार राग रंग सब त्यागे 'छैल'
संग की सहेलिन की सुधि ना सम्हारी है ॥

॥ ८ ॥

चंचल चितौन सौं चुराय चित्त चंचला सी,
काजर की कोरन कटा किमि करत है।

लौनी लतान बीच लुक लुक "रसिक छैल"
मटक मटू मोर हिते आहें भरत हैं ॥

बार-बार बौरें कै वारि दृग झरत वीर,
धक-धक करै हिय धीर ना धरत है।

मान माननी री मत मन मांहि मान करै,
मोहन मुरारी मार-मारे तें मरत हैं ॥

॥ ९ ॥

लांबी लटकारी अतिकारी लहकारी अलि,
जाकी छवि छैल नीकी बुद्धि भरमाई है।

डारत कलंकहि कला निधि निचारे कैधों,
कैधों मन धीरज विदारिवे जमाई है॥

नागरि सनाल मुख कंजतें लगो है कैधों,
मुख मणि दांव अहि सुरत गमाई है।

कीनों तम पान कै तमोपति के पाछै परी,
कैधों लट चुटीला की वेणी में समाई है॥

—:o:—

होली

॥ १ ॥

आई हो नवेली गौने रंग को न जानै सार,
किये हैं सिगार नार शंका उर धारी है।

देखे नन्दलाल हाल चढ़त सोढ़ीन लिए,
करन गुलाल और केसर की धारी है॥

हिय ठहरानी अकुलानी देख कृष्ण जू कौं,
होगी झक झोरी खुल जैहें तन सारी है।

"रसिक छैल" संग की सहेली हू हारीं सारी,
होरी के डरसौं सो चढ़त ना अटारी है॥

॥ २ ॥

काकौ हैरी कारौ कान्ह काहू की न करैं कान,
कटि काछनी कर कंचन की कटोरी है।

गोरे-गोरे गाल गुलाल लाल ग्वालिन-ग्वाल,
गिन-गिन गारिन के गुट्ट गात गोरी है॥

"रसिक छैल" राधा रँगीली राज-राज रही,
राधिका के राजा रचैं रास रंग रोरी है।

हर लैगौ हार हरि जू हियरा हिरानो हौं,
हरि सौं हठि हारी हौं हाय हेली होरी है॥

॥ ३ ॥

रंग-विरंगे दुकूलन कौं ओढ़ चालीं आलीं,
घटा सम दरसैं सुअंवर गुपाल के।

चलैं पिचकारी मेह बरसैं ज्यों धारन सौं,
दामिनि दमकैं बेंदी नीकी बीच भाल के॥

बाजें मृदंग ढप गरज घन बीच भई,
झींगुर से झिंगारे हैं नूपुर विशाल के।

"रसिक छैल" होरी बीच वर्षा ऋतु आई है,
उड़ रहे बादल बहुरंगो गुलाल के॥

॥ ४ ॥

भोर ही ते बृज में धूम होली मचाई आज,
डोलें गलियन लिए ग्वाल बाल संग में।

जो हू बृज नारी मिलें याकूं अगारी छिन में,
पकर गुलाल लाके मलदेत अंग में॥

"रसिक छैल" कैसो प्रगट भयो नन्द जू के,
काहू कों न देखें निज जोवन तरंग में।

देख मोय गोरी जोरी करी मति भोरी भई,
कृष्ण कान्ह चूंदर भिजोय डारी रंग में॥

॥ ५ ॥

ऐसो नांहि देख्यो ना सुन्यों हों फाग में,
लें वीर नीर नां भरन देत फोर देत मटूकी।

डोलें इतराते मदमाते बने छैल तहां,
देख के इकन्त कन्त नीवी गहि झटको॥

"रसिक छैल" बौरे भये हैं सब बाल-वृद्ध,
रोक राह लीनी तिन मेरे पन घट की।

ऐसी वर जोरी ना करौरे पिय मोसौं आज,
लाज राखौं श्याम मेरे घूंघट के पट की॥

॥ ६ ॥

लागत ही फागुन निज प्यारी सिधारी मैके,
काके लगावन हेत रंग घुरवायेंगे।

हुऔ रस फीकौ कछु नीकौ ना लगत मोहि,
करकें सब केलि मो मन को जरायेंगे॥

"रसिक छैल" कैसे कटहिंगे ये तीस दिन,
एक एक पल एक वरस सब जायेंगे।

रहे हैं अकेले कछु मन में उमंग नहिं,
तब भी या साल हम होरी को मनायेंगे॥

॥ ७ ॥

लागी आग बन में न मन को सुहात कछू,
छाँड़ि गई प्यारी कौन जानें विपति मोरी।

डोलें हुलसाते सब नारिन कौं संग लिए,
प्रेम में भरी हैं परीं गल में भुजा गोरी॥

"रसिक छैल" बाजें मृदंग ढप झांझ खूब,
मगन भये नांचत हैं नित्य छोरी-छोरी।

आग लगौ फागुन में जबहूं मिलेंगी प्रिये,
तब ही हम खेलेंगे गुलाल रंग होरी ॥

॥ ८ ॥

फागुन कौ मास बड़े भागन ले आयो आज्ञु,
होरी के बहाने मौज रस रंग कीजिये।

अधरन कौं चूमों ओ गालन गुलाल मलौ,
कंचुकी के बंद खोल दोनों कुच मीजिये ॥

चाहे पुर नारी सारी यारी को चुनाव करें,
लै कर निशंक कंत अंक भर लीजिये।

"रसिक छैल" नाहीं अंघात है रती सौं बाल,
पुलक कहै पी प्रेम प्याला फेर पीजिये ॥

॥ ६ ॥

कर पिचकारी भर मारी गिरधारी तान,
भोरी सी किशोरी लै अबीर कौं उताल री।

एक दूजे डारें नहि हारे हैं सम्हारें दाव,
बिखरे शृंगार उत टूटो मुक्त माल री ॥

"रसिक छैल" बौरे भये हैं सब बाल-वृद्ध,
रोक राह लीनी तिन मेरे पन घट की।

ऐसी वर जोरी ना करौरे पिय मोसौं आज,
लाज राखौं श्याम मेरे घूँघट के पट की ॥

॥ ६ ॥

लागत ही फागुन निज प्यारी सिधारी मैके,
काके लगावन हेत रंग घुरवायेंगे।

हुऔ रस फीकौ कछु नीकौ ना लगत मोहि,
करकैं सब केलि मो मन को जरायेंगे ॥

"रसिक छैल" कैसे कटहिंगे ये तीस दिन,
एक एक पल एक वरस सव जायेंगे।

रहे हैं अकेले कछु मन में उमंग नहि,
तब भी या साल हम होरी को मनायेंगे ॥

॥ ७ ॥

लागी आग वन में न मन को सुहात कछू,
छांड़ि गई प्यारी कौन जानें विपति मोरी।

डोलें हुलसाते सब नारिन कों संग लिए,
प्रेम में भरी हैं परीं गल में भुजा गोरी ॥

"रसिक छैल" बाजें मृदंग ढप झांझ खूब,
मगन भये नांचत हैं नित्य छोरी-छोरी।

आग लगौ फागुन में जबहूं मिलैगो प्रिये,
तब ही हम खेलेंगे गुलाल रंग होरी॥

॥ ८ ॥

फागुन कौ मास बड़े भागन लें आयो आजु,
होरी के बहाने मोज रस रंग कीजिये।

अधरन कौं चूमों ओ गालन गुलाल मलो,
कंचुकी के बंद खोल दोनों कुच मीजिये॥

चाहे पुर नारी सारी यारी को चुनाव करें,
लै कर निशंक कंत अंक भर लीजिये।

"रसिक छैल" नाहीं अंघात है रती सौं बाल,
पुलक कहै पी प्रेम प्याला फेर पीजिये॥

॥ ९ ॥

कर पिचकारी भर मारी गिरधारी तान,
भोरी सो किशोरी लै अबीर कौं उताल री।

एक दूजे डारें नांहि हारे हैं सम्हारें दाव,
बिखरे श्रृंगार उत टूटी मुक्त माल री॥

'रसिक छैल' गैल गैल छैल मग रोकैं है,
उत वृषभानु की करत मुख लाल री।

अंग-अंग राधिका के चुवत सुरंग रंग,
लालन के भाल बीच दिपंत गुलाल री॥

॥ १० ॥

होरी के दिनारी कहूँ नवल कुमारी प्यारी,
छुपक सिधारी गहि ओटक तिवारी की।

मोहन मुरारी बनवारी वो हठीलो भारी,
रोकी वृजनारी तान बंसी व्रजभारी की॥

'रसिक छैल' भारी अनारी वो अनोखी जारी,
बिहँस सम्हारी गह बाँह वैस वारी की।

मारी पिचकारी तन भीज गई सारी,
कंचुकी उतारी कह होरी मतवारी की॥

॥ ११ ॥

सखि धूम मची है अनौखी आज,
सब साथ लिए होरी के साज।

कर पिचकारी लिए गिरधारी,
छतियन मारी कित जाऊँ भाज॥

खैंचत सारी न मानें अनारी,
या लाज निगोड़ी पै परियौ गाज।

ग्वालिन टोली मलै मुख रोली,
करत ठठोली मानों या ही कौ राज॥

गावत रसिया बन्यों रंग रसिया,
'रसिक छैल' शिर सोहै ताज॥

॥ १२ ॥

होरी के मांते ग्वाल निकसे संग नन्दलाल,
चलती लचीली चाल छैल ब्रजबाला हैं।

रिपट रंग कीच अंक लैहैं उताल मांनो,
कंचन की बेल संग लिपट्यौ तमाल है॥

लाल भये दोनों गाल लाल भई मुक्त माल,
केसर के थाल धारी चोट [illegible] कराल है।

केश जाल भयो लाल लोचन विशाल लाल,
लालन के भाल लाल दिपंत गुलाल है॥

—:o:—

ऋतु वर्णन

॥ १ ॥

चमक उठी है घन बीजुरी अकाश बीच,
मानों तोप रंजक पै पलीता दिखायो है।

परै मेह बूंद ज्यों बरसत अमोघ शर,
बकुल कतार सोई खंग चमकायो है॥

"रसिक छैल" इन्द्रधनु नीको कमान सोहै,
कोकिल, मयूर, प्यादेन हल्ला मचायो है।

जान कैं नवेली बिना प्यारे के अकेली मोच,
सामन ना प्यारी वैरी काम चढ़ि आयो है॥

॥ २ ॥

चमकीं चपला चहुं चंचल है,
अबलानन चित्त चुरावनों हैं।

घुमड़ाय घिरीं घन की ये घटा,
घहराय अटा हु दुरावनों है॥

बरसै बुंदियां बन-बागन में,
पिक दादुर बोल सुनावनो है।

सखि सांच कहौं ऋतु पावस में,
यह सामन मास सुहावनो है॥

॥ ३ ॥

यह आठें अँधेरो को आई भलो,
सब भारत मोद मनावनो है।

व्रत राखत गेह सजात सभी,
निज पौरिन चौक पुरायनो है॥

निशि आँधी चली हरि मंदिर कों,
वह दृश्य सुचित्त लुभायनो है।

तें हूं 'छैल' लला पलना में झूलें,
सखि लागत मोहि सुहावनो है॥

॥ ४ ॥

शरद समीर चाले कांपत है अंग-अंग,
बिना पिया प्यारे कौन हृदय लगावै री।

शीतल शरीर भयौ रक्त ने हू गति थामी,
सगरो शृंगार बंद ढीलो हुओ जावै री॥

बालम मिलाओ नहिं और तरकीब कोउ,
बोरी भई है काहे, औषधि को मंगावै री।

'रसिक छैल' काहे बुलावत हो वैद स्याने,
चहो भर अंक जीवन ज्योति जगावै री॥

॥ ५ ॥

चलत समीर सीरी कंपित करत गात,
घाटी उष्णता हू उत भानु बलवंत की।
इन्दु बीच शीतलता अधिक समाई आन,
सुन्दर हरियाली फली फूली दिगन्त की॥
गोरे गात वारी रतनारे नैन रूप वारी,
चढ़त अटारी हुलसाय सेज कन्त की।
'रसिक छैल' फूली समात नहीं चन्द्रमुखी,
हँस हिय लागी कह बधाई हेमन्त की॥

॥ ६ ॥

सीतल समीर के सुरीले सुरबैन सों,
सासति सी समाई जग साधु औ सन्त में।
औसर आराम के अजब अनमोल की साधे,
आग हू बुझानी आज यक थक अन्त में॥
मजन मसाल अरु सुरता के प्याले पिये,
दरत चना से दुरि दोहर हू दन्त में।
हिम है हिमालय में 'छैल' हिम आलय में,
हिम को न अन्त पर समस्या हेमन्त में॥

॥ ७ ॥

पीरे आभूषण औ बसंती हों बसन्त नीके,
पीरो ही मृदंग लै बसन्त राग गावैं री।

पीरो सुरंगो रंग कनक पिचकारी डार,
पीरो गुलाल उड़ आकाश बीच छावैं री॥

"रसिक छैल" पीरी सेज चढ़कें पिया प्यारी,
पीरो परी मोय आय हृदय लगावैं री।

काम कूं जगावैं लगी तन को बुझावैं सखी,
ऐते हों साज तब बसंत मन भावैं री॥

॥ ८ ॥

चलत समीर शीतल सी-सी करत लोग,
अधिक आनन्द देत सी-सी मतवारी की।

कुचन विकास उत दाडिम लगे हैं काचे,
सरसों बनफूली छ्यों शोभा अंगसारी की॥

रंगी औ विरंगी खिले फूल बगियान बीच,
'रसिक छैल' रंगी सुशोभा चित्रसारी की।

निज-निज विकास पै हँसे हैं होड हारें ना,
इत में बसन्त उत बाल वैसवारी की॥

॥ ९ ॥

फूले हैं पलास कचनार औ अनार सवै,
मानों महि धार परै अग्नि की दिगंत में।

शीतल चलत पौन सुन्दर सजे हैं मौन,
वैठी गहि मौन नैक नाहीं हुलसंत में॥

विरहा जरंत गात रैन ना सुवन्त नारि,
लाऊ नहि वार आज रिष हू पियंत में।

प्यारे बिन सारे लगें और से 'रसिक छैल'
कंत विन अन्त सों दिखात है वसंत में।

॥ १० ॥

देखौ यह शीत कौ प्रभाव सब छीन भयो,
सरसों फुलानी आली दसहु दिगंत में।

उठत तरंग नई मन में अनौखी आज,
आंगी उचौनी कछु छतियाँ उकसंत में॥

अधर पान कीजै रति केलि रस लीजे री,
वारि नहि जाओ पुनि हिय हुलसंत में।

पौढौ चित्त सारी नैक हँसि कै "रसिक छैल"
प्यारी उर लायौ है वधाई ओ वसंत में॥

॥ ११ ॥

चमक डरावै घन बीजुरी प्रकास बीच,
· परै नांहि बूंद देख नारी-नर तरसैं।

ग्रीष्म की ताप वृक्ष पता सब झार दिये,
सूख गये पिंजर डोर लागी है हरसैं॥

ऐ हो कृपानाथ सुधि - लीजिए हमारी बेग,
याट तक हारे जीय दान बेउ झटसैं।

"रसिक छैल" निज जन जानि कैं कृपा कीजै,
गर्जै लर्जै आय घटा मो अटान बरसैं॥

॥ १२ ॥

सावन बितानो नहिं आये सुभावन अबै,
उन बिन भई थे ऋतु कैसी निरालो है।

देख-देख विज्जु उर विरहा की उठैं ज्वाल,
शीतल समीर अंग जारवे को चालो है॥

रसिक छैल परैं बूंद मानों लगें हैं तीर,
कोकिल की कूक हिये सेल सम सालो है।

पति को पपीहा कछु पीहु पीहु पीहु नाहीं,
आई दुःख देन मोकों तीज हरियालो है॥

॥ ९ ॥

फूले हैं पलास कचनार औ अनार सबै,
मानों महि धार परै अग्नि की दिगंत में।

शीतल चलत पौन सुन्दर सजे हैं मौन,
बैठी गहि मौन नैक नाहीं हुलसंत में॥

विरहा जरंत गात रैन ना सुवन्त नारि,
लाऊ नहि वार आज रिष हू पियंत में।

प्यारे बिन सारे लगैं और से 'रसिक छैल'
कंत बिन अन्त सों दिखात है बसंत में।

॥ १० ॥

देखौ यह शीत को प्रभाव सब छीन भयो,
सरसों फुलानी आली दसहु दिगंत में।

उठत तरंग नई मन में अनोखी आज,
आंगी उचौनी कछु छतियाँ उकसंत में॥

अधर पान कीजै रति केलि रस लीजे री,
वारि नहि जाओ पुनि हिय हुलसंत में।

पौढो चित्त सारी नैक हँसि कै "रसिक छैल"
प्यारी उर लायौ है बधाई ओ वसंत में॥

॥ ११ ॥

चमक डरावै घन बीजुरी प्रकाश बीच,
परै नांहि बूंद देख नारी-नर तरसैं।

ग्रीष्म की ताप वृक्ष पता सब झार दिये,
सूख गये पिंजर डोर लागो है हरसैं॥

ऐ हो कृपानाथ सुधि-लीजिए हमारो वेग,
वाट तक हारे जीव दान वेउ झटसैं।

"रसिक छैल" निज जन जानि कै कृपा कीजै,
गर्जे लर्जे आय घटा मो अटान वरसैं॥

॥ १२ ॥

सावन बितानो नहिं आये सुभावन अबै,
उन बिन भई थे ऋतु कैसी निराली है।

वेख-वेख विज्जु उर विरहा की उठै ज्वाल,
शीतल समीर अंग जारवे को चाली है॥

रसिक छैल परै बूंद मानों लगै हैं तीर,
कोकिल की कूक हिये सेल सम सालो है।

पति को पपीहा कछु पीहु पीहु पीहु नाहीं,
आई दुःख दैन मोकों तीज हरियाली है॥

॥ १३ ॥

केश घुंघरा के घन छाये चहुं ओरन ते,
मोतिन लरी पक्षि पंक्ति सम निराली है।

हीरा जड़्यो शीश फूल दमकैं सुदामिनी ज्यों,
इन्द्र धनु सोहू कंचुकी की रंगी जाली है॥

होटन पै नखन पै हात की हथेरिन पै,
पांमन के ऊपर लगी ये चारु लाली है।

"रसिक छैल" साड़ी हरी हियरा हरै है ये,
नारि है नवेली किधौं तीज हरियाली है॥

॥ १४ ॥

पुष्पन वधाई वन वागन वधाई सब,
वृक्षन वधाई बड़ी पक्षिन समाज की।

रागन वधाई भले आंगन वधाई नव,
बधुन वधाई जे सजी हैं सुख साज की॥

कविन वधाई इन गैलिन वधाई रंग,
रंगन वधाई 'छैल' छाई रतिराज की।

वेलिन वधाई औ नवेलिन वधाई देत,
तुमको वधाई आज पिय रितुराज की॥

विविध

॥ १ ॥

रहि रूप सदां हमरो थिर पे,
यहि ज्योति बढ़ै सवरे मुख की।

बल मोहन योच रहै मद को,
न तु ताकत 'छैल' घटै तनको॥

जु कही सुकरी नकरो नकही,
बस बात रहै अपने मन की।

सुन मात यही वर मांगत हूं,
नहि आंट फटै तरु तापन की॥

॥ २ ॥

पुलक जाय समिति में बैठे गुमान भरे,
कोरे घमंड ते जगत में काज ना सरें।

निज मन जानें हैं हम सर न और कोऊ,
डींग बड़ी हांकें नहीं काहु देव सों डरें॥

रहि कै ब्रज मांहि ब्रजभाषा को त्यागत हैं,
जानें नहीं रस खड़ी भाषा को दम भरें।

'रसिक छैल' डूब्यो है कवि को समाज यहां,
ऐसे निर्बुद्धिन में कविता दै कहा करें॥

॥ १३ ॥

केश घुँघरा के घन छाये चहुँ ओरन ते,
मोतिन लरी पक्षि पंक्ति सम निराली है।
हीरा जड़्यो शीश फूल दमकैं सुदामिनी ज्यों,
इन्द्र धनु सोह् कंचुकी की रंगी जाली है॥
होटन पै नखन पै हात की हथेरिन पै,
पांमन के ऊपर लगी ये चारु लाली है।
"रसिक छल" साड़ी हरी हियरा हरै है ये,
नारि है नवेली किधौं तीज हरियाली है॥

॥ १४ ॥

पुष्पन वधाई वन वागन वधाई सव,
वृक्षन वधाई वड़ी पक्षिन समाज की।
रागन वधाई भले आंगन वधाई नव,
वधुन वधाई जें सजी हैं सुख साज की॥
कविन वधाई इन गैलिन वधाई रंग,
रंगन वधाई 'छैल' छाई रतिराज की।
वेलिन वधाई औ नवेलिन वधाई देत,
तुमको वधाई आज पिय रितुराज की॥

विविध

॥ १ ॥

रहि रुप सदां हमरो थिर ये,
महि ज्योति बढ़ै सवरे मुख को।

बल मोहन बीच रहै मद को,
न तु ताकत 'छैल' घटै तनको॥

जु कही सुकरी नकरो नकहो,
बस बात रहै अपने मन को।

सुन मात यही वर माँगत हूँ,
नहिं आंट कटै तरु तापन को॥

॥ २ ॥

पुलक जाय समिति में बैठे गुमान भरे,
कोरे घमंड ते जगत में काज ना सरै।

निज मन जानें हैं हम सर न और कोऊ,
डींग बड़ी हांकै नहीं काहू देव सों डरै॥

रह कै ब्रज माँहि ब्रजभाषा को त्यागत हैं,
जानें नहीं रस खड़ी भाषा को दम मरै।

'रसिक छैल' डूब्यो है कवि को समाज यहाँ,
ऐसे निर्बुद्धिन में कविता दै कहा करै॥

॥ ३ ॥

शोर नभ मंड कर धाई वहु धारन सों,
भूतल पै आय बल वेग सों सिधाई है।
'चैल' घर फोरे बन्ध तोरे वहु वींचन में,
वाँधी वहु भाँति सब भूले चतुराई है॥
श्री व्रजेन्द्र भूपति भगीरथ सो आज भयौ,
रोकी जलवाढ़ कौन तेरी समताई है।
पापिन के तारिवे को दुष्टन विदारिवे कौ,
विगड़ी सुधारिवौ कौ गंग चली आई है॥

॥ ४ ॥

छाँड्यौ है भारत वहु डोलन में वंद भई,
लाखों की तमाखू आज यूरूप को जात है।
वन कैं सिगरेट लौट आवै सो सुन्दर ह्वै,
पीवत सुगन्ध उड़ै धूप हू लजात है॥
कोई याहि पीवै, नाक में चढ़ावत है,
कोई डार पान में प्रसन्न मन खात है।
मेरा है कहना ना औसर को त्यागौ तुम,
आज के जमाने में वस हुक्का वड़ो वात है॥

॥ ५ ॥

चमकी रण चंचल दामिनी सी,
सब वीरन जीवन खोय गई।

गज काट महा धरनी पटके,
अटके डरते तिन जोप गई।

मन 'छैल' सदा शठ पापिन के,
शिर औ तन झुंडन ढोय गई।

कलिकाल कराल ह्याल बुरी,
लखि म्यान भई थक सोय रही॥

॥ ६ ॥

गिरि ना गिनेंगे नर गिरेंगी गति घाटिन सों,
गुन गर्वीलिन के झंडे गढ़ जायेंगे।

करि करि कें कोप कूद सें कें कुल्हाड़ी कर,
मारें कठोर कानन काट कढ़ि जायेंगे॥

बानन से बांकुर बहादुर जैं बोल छैल,
बब्बर से बली वीर बाँकि बढ़ जायेंगे।

सेना कें सतर्क हुए साहसी सिपाही सब,
सारे मैल संगन समोद चढ़ि जायेंगे॥

॥ ७ ॥

शनि जब आवत है चौथो पुनि मास अन्त,
कोई कह करुण को करुणा जनाते हैं।
एक वीर रौद्र वीभत्स औ भयानक कहैं,
जेते हैं प्रसन्न मन हास्य को सुनाते हैं॥
जिनका है शान्त मन शान्त का ही ध्यान धरें,
भक्ति करन हरि अद्भुत मनाते हैं।
'रसिक छैल' चित्त को नभाते ये आठों रस,
सुन्दर संयोग शृंगार सज बनाते हैं॥

॥ ८ ॥

नित नूतन प्रेम परस्पर हो,
जनते जन नैंकन जीय जरैं।
तन भारत भूमि सुकाज लगैं,
निज गौरव के हित जीय धरैं॥
वरसें घन औ उपजें घन - धान,
नहीं प्रभु को पल ध्यान टरैं।
हरषैं छवि "छैल" छटा छिटकें,
सुख सम्पत्ति सों सब देश भरैं॥

॥ ६ ॥

हट जांय घटा दुःख को जग सों,
अँसुआ नहिं नैनन नेक ढरें।

निज कर्म करें सगरी जनता,
शुभ कर्म सों जीवन नेक टरें॥

हँसते हिय औ हुलसात रहें,
नहिं रोग जरा जग जान परें।

बस 'छैल' मिलै मन शान्ति तभी,
सुख सम्पत्ति सों सब देश भरें॥

॥ १० ॥

झेलता है सबकी नहीं बुरा कभी मानता है,
ख्याल नहीं करता है रूप के सम्हारे का।

करता है फिदा दिल उन सब हूरों पर,
जिंदगी बचाता लेके और से उधारे का॥

"रसिक छैल" बावलो करता हमेशा बात,
जहर चढ़ा ही रहे इश्क मतवारे का।

रोता है न हँसता न खाता-पीता-सोता कभी,
सबसे गरीब दिल आशिक विचारे का॥

॥ ११ ॥

फिरते रहे हैं इस फिक्र में हमेशा हम,
लाखों उपाय करके उन्हें समझाते हैं।
एक बार भी न तीखी नजरों से हमें देखा,
घूँघट निकाल कर नाहक सताते हैं॥
बोलते नहीं हैं और मूँह फेर लेते झट,
करके ख्याल तीर आखिरी चलाते हैं।
'रसिक छैल' जाना के दिल को लुभाने आज,
दिलकश सुरीली ये शायरी बनाते हैं॥

॥ १२ ॥

पीरे-पीरे दांतन पै कांटि जमी पीरी-परी,
पीरी चुवै रैत चिन्ता नैक नहि लाज की।
एक आँख टैर जामें पानी झरै पीरौ - पीरौ,
मुखराजधानी राजै मक्खिन समाज की॥
मैली घाघरी में दिये मैले की सुपीरी छांप,
पीरी झरै पीव शोभा नीकी अति खाज की।
पतझर समान लट जुँआ झरत ताके,
देख साज लाज भई सैन रितुराज की॥

॥ १३ ॥

निकस मियान घड़ी एक ना विराम लेत,
चपला सी चमक शत्रु छाती विदार है।
बिज्जुली झमक्के नहि सक्के अरि नाशत में,
अश्वमार हातीशर वीरन में पार है॥
"रसिक छैल" सूजा के सुत हो जवाहर जू,
तेरी सब पंज पूरी राखी करतार है।
कट्ट-कट्ट मुंडन के झुंड अवसिक्त करे,
अति ही प्रचंड वंड तेरी तरवार है॥

—:o:—